जुलाई /अगस्त 2026

रूहानी रिश्ता

साइंस ऑफ़ द सोल रिसर्च सेंटर

विषय सूची

4 भली बुरी यह मानुष देह
5 अमूल्य उपहार
10 अपने सच्चे स्वरूप की तलाश
16 ज़िंदगी को सरल रखना
19 और कुछ भी मायने नहीं रखता
25 भजन-सिमरन क्यों करना है?
31 सतगुरु की मौजूदगी
36 प्रसाद का तोहफ़ा
38 हज़ारों मील का सफ़र
43 उपेक्षित आत्मा
49 प्रेम का साकार रूप

रूहानी रिश्ता

Science of the Soul Research Centre
Guru Ravi Dass Marg, Pusa Road, New Delhi-110005, India
Copyright © 2026 Science of the Soul Research Centre®

बिना स्रोत के कुछ लेख और कविताएँ इस पत्रिका के लेखकों द्वारा लिखी गई हैं ।

भाग 22 • अंक 4 • जुलाई अगस्त 2026

भली बुरी यह मानुष देह

नहीं बुरा संसार में कुछ भी मानुष देह सा,
नहीं सुंदर त्रिलोकी में कुछ भी इस नर देह सा।

बुरा सोचकर देह छोड़ जो देगा, मोक्ष फिर पा न सकेगा।
सुंदर मान कर जो भोग करेगा, नरक तुझे भोगना पड़ेगा।

त्याग–भोग को छोड़कर, खोजो बीच की डगर।
आत्म साधना में लीन जो होगा, वह हित अपना ही करेगा।

देह से जितना भोग करेगा, उतना ही बंधन में पड़ेगा।
विषय–विकारों में फँसा रहेगा, तो हावी यह हो जाएगा।

देह टिकी हो एक आसन में, या फिर लगी हो काम–काज में,
मन निश्चल है जिसका, वही है निर्मल, वही है योगी।

एकनाथ: स्वर अनेक, गीत एक

अमूल्य उपहार

मौजूदा सतगुरु के शिष्य होने के नाते हमें उनसे अमूल्य उपहार मिला है जो उनकी दया-मेहर से भरपूर है। जब हम इस उपहार को खोलते हैं तब इसमें से हमें बिल्डिंग ब्लॉक्स (Building Blocks) मिलते हैं जिन्हें अगर उचित क्रम से एक-दूसरे के ऊपर रखा जाए तो एक ऐसा ढाँचा बन जाता है जो हमारी सुरत को तीसरे तिल और उससे भी परे ले जा सकता है।

पहला ब्लॉक बहुत बड़ा और मज़बूत आधार है, जिस पर 'मनुष्य-जन्म' लिखा है। अगर यह ब्लॉक न हो तो बाक़ी ब्लॉकों को जोड़ा ही नहीं जा सकता। दूसरा ब्लॉक 'देहधारी सतगुरु से मिलाप' है, उसके बाद तीसरा ब्लॉक आता है जिस पर 'नामदान' लिखा है। इन तीन महत्त्वपूर्ण ब्लॉकों के बाद कुछ थोड़े छोटे लेकिन बेहद अहम ब्लॉक आते हैं। चौथा ब्लॉक 'भजन-सिमरन' है, इसके बाद शाकाहार, शराब, मादक पदार्थ और तंबाकू आदि से दूर रहना और 'नैतिक जीवन जीना' आदि ब्लॉक आते हैं।

आख़िरी दो ब्लॉक पूरे ढाँचे को एक साथ बाँध देते हैं, इन्हें 'गुरु भक्ति' कहा जाता है यानी कि गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति और आख़िरकार 'नाम भक्ति' अर्थात् शब्द को सुनना। इस अभ्यास के ज़रिए हम शब्द रूपी जीवन धारा से जुड़ जाते हैं और हमारे अंदर परमात्मा के लिए प्रेम पैदा होने लगता है। जब ये आख़िरी ब्लॉक अपनी-अपनी जगह मज़बूत हो जाते हैं तब बाक़ी के सारे ढाँचे को एक मक़सद और मायना मिल जाता है।

यह अत्यंत दुर्लभ और अमूल्य उपहार परमात्मा की देन है जो उसी के प्रेम और अपार दया-मेहर से मिलता है। इसके लिए हमें तहे दिल से उसके शुक्रगुज़ार होना चाहिए।

ऐसा लगता है कि आजकल मनुष्य-जन्म रूपी इस उपहार की उतनी क़द्र नहीं की जाती। यह कितने दु:ख और अफ़सोस की बात है। संत-महात्मा अकसर मनुष्य को सृष्टि का सिरताज कहते हैं फिर भी लाखों लोग अत्यंत गरीबी, दु:ख और पीड़ा में अपना जीवन गुज़ार रहे हैं जिससे इसे दिया

गया इतना ऊँचा दर्जा सही नहीं लगता। फिर भी हमें बताया जाता है कि देवी–देवता, जो दिव्य लोकों में रहते हैं, वे भी मनुष्य–जन्म पाने के अद्‌भुत अवसर और सौभाग्य के लिए तरसते हैं।

तो आख़िर मनुष्य–जन्म में ऐसा क्या है जो इसे इतना ख़ास बनाता है? वह ख़ास बात यह है कि सिर्फ़ मनुष्य के जामे में ही हमारा मिलाप किसी पूर्ण सतगुरु से हो सकता है और हमें उनसे नामदान की बख़्शिश प्राप्त हो सकती है। इस उपहार के मिलने पर हमारी तरफ़ से की गई कोशिश इस बात की गारंटी है कि हमारी आत्मा जो कि बहुत लंबे समय से जन्म–मरण और पुनर्जन्म के चक्र में फँसी हुई है आख़िरकार इस चक्र से मुक्ति पा लेती है। केवल पूर्ण सतगुरु, जो स्वयं परमात्मा की पहचान कर चुके हैं, ही हमें यह उपहार दे सकते हैं और यह दात केवल मनुष्य को ही दी जा सकती है। महाराज चरन सिंह जी अपनी पुस्तक *जीवत मरिए भवजल तरिए* में फ़रमाते हैं:

> *हमारा सच्चा गुरु है वर्ड, लॉगॉस, नाम, शब्द, चेतन धुन या जो भी नाम कोई उसे देना चाहे। सतगुरु उस शब्द का, उस शक्ति का देहधारी स्वरूप है।*

पूर्ण सतगुरु इस संसार में परमात्मा के दूत या प्रतिनिधि बनकर आते हैं। वह परमात्मा के प्रेम की साकार मूरत होते हैं और उन्हें हमारी आत्माओं को शब्द से जोड़कर हमें हमारे सच्चे घर वापस ले जाकर परमात्मा में अभेद करने की शक्ति प्राप्त होती है। यह संबंध नामदान के समय से ही जुड़ जाता है।

जब हमें नामदान रूपी उपहार प्राप्त होता है तो सतगुरु हमें यक़ीन दिलाते हैं कि हमारी इस सृष्टि में आवागमन की अंतहीन यात्रा समाप्त हो जाएगी और हम निज–घर वापस जाने के क़ाबिल बन जाएँगे। फिर हमें कभी भी इस रचना में वापस नहीं आना पड़ेगा क्योंकि असल में परमात्मा भी यही चाहता है कि हम वापस उसके पास लौट जाएँ। जब हमें नामदान की बख़्शिश हो जाती है फिर कुछ भी हमें घर वापस जाने से नहीं रोक सकता।

पहले तीन बिल्डिंग ब्लॉकों – मनुष्य–जन्म, सतगुरु और नामदान का मिलना – में से कुछ भी हमें हमारी अपनी कोशिशों से प्राप्त नहीं होता। ये

परमात्मा की तरफ़ से मिले उपहार हैं। लेकिन अगले ब्लॉकों के लिए हमें अपनी तरफ़ से कोशिश, एकाग्रता, करनी और लगन की ज़रूरत है।

नामदान के समय जब हम चार प्रण लेकर उन्हें निभाने का वायदा करते हैं तब हम जीवन-भर निरंतर यत्न करते हुए ख़ुशी-ख़ुशी अपने सतगुरु के हुक्म का पालन करने के लिए वचनबद्ध हो जाते हैं। सबसे अहम कार्य जिसकी उम्मीद सतगुरु हमसे रखते हैं, वह है हमारा रोज़ाना का भजन-सिमरन। नामदान के समय हमें भजन-सिमरन करने की युक्ति समझाई जाती है और इसे जीवन-भर रोज़ाना बिना नाग़ा करते रहना हमारा फ़र्ज़ भी है और सौभाग्य भी।

नामदान सिर्फ़ एक रूहानी उपहार ही नहीं है बल्कि हमारे लिए एक अत्यंत शक्तिशाली साधन भी है। सतगुरु हमें पाँच शब्दों या नामों का भेद देते हैं जिन्हें दोहराने को सिमरन करना कहा जाता है। हमें बताया जाता है कि अभ्यास के पहले दो घंटे इन शब्दों को दोहराना है। इन शब्दों में इतनी ताक़त होती है कि पहले जिस मन को स्थिर करना नामुमकिन लगता था, सिमरन द्वारा उसके स्थिर होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इससे हम अपने ख़याल को तीसरे तिल पर एकाग्र करने के लायक़ बन जाते हैं जो कि दोनों आँखों के बीच, थोड़ा ऊपर स्थित रूहानी केंद्र है।

सिमरन सतगुरु द्वारा बख़्शा गया वह साधन है जिससे हम अपने ख़याल को दुनिया में से निकालकर तीसरे तिल की ओर ले जाते हैं। अगर हम सिमरन नहीं करते हैं तो हम अपने ख़याल को अंदर एकाग्र नहीं कर पाएँगे और अपने वास्तविक अंदरूनी रूहानी सफ़र का पहला छोटा-सा क़दम भी नहीं उठा पाएँगे। जितना ज़्यादा सिमरन हम करते हैं यह उतना ही शक्तिशाली होता जाता है।

भजन-सिमरन का अभ्यास हमारी तरफ़ से दिया जानेवाला अहम योगदान है–हमारी तरफ़ से की गई यह कोशिश सतगुरु द्वारा हमें इस दुनिया से बाहर निकालने और वापस घर ले जाने में सहायक होती है। सख़्ती से शाकाहार का पालन करना, शराब, मादक पदार्थों और तंबाकू से बने उत्पादों से परहेज़ करना तथा अच्छे इनसान बनने का प्रयास करना हमारी तरफ़ से

दिए जानेवाले अन्य योगदान हैं। ऐसा करने से हम कर्मों का कम से कम बोझ इकट्ठा करते हैं।

परमात्मा निर्मलता, प्रेम, करुणा और दया का परम स्रोत है। यदि हम नकारात्मकता, क्रूरता, क्रोध, घृणा, द्वेष और असंतोष से भरे हुए हैं तो हम उसके दरबार में पहुँचने की आशा कैसे कर सकते हैं? यदि हमारे अंदर परमात्मा से मिलाप की चाह है तो हमें मन, वचन और कर्म से निर्मल होने की कोशिश करनी पड़ेगी।

मन और मन की नकारात्मक प्रवृत्तियों के खिलाफ़ इस लड़ाई में हम निहत्थे नहीं हैं। हमारे पास सिमरन की शक्ति है। इस बात को याद रखते हुए हमें सिमरन करते रहना है।

अंतिम दो ब्लॉक – भक्ति अर्थात् गुरु भक्ति और फिर सबसे महत्त्वपूर्ण, नाम भक्ति – हमारे रूहानी ढाँचे को मज़बूत करते हैं, जिससे हमारी सुरत तीसरे तिल और उससे भी ऊपर उड़ान भरने के लायक़ बन जाती है। स्वामी जी महाराज पुस्तक *सारबचन संग्रह* में फ़रमाते हैं:

> *गुरुमुखता बिन सुरत न चढ़ती। फूटे गगन न पावे नाम॥*
> *गुरुमुखता है मूल सबन की। और साधन सब शाखा जान॥*

जो लोग पुनर्जन्म और आत्मा के अनगिनत योनियों में जन्म लेने के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं, उनके लिए जन्म-मरण और पुनर्जन्म के इस अंतहीन चक्र से हमेशा के लिए मुक्ति पाने का विचार सचमुच बहुत ही रोमांचक है। यक़ीनन कोई भी इस चक्र में ही फँसे रहना पसंद नहीं करेगा। हम अपने घर वापस जाना चाहते हैं; हमारी आत्माएँ अपने परमपिता से मिलने के लिए तड़प रही हैं ताकि दुःखों से भरे इस संसार से हमेशा के लिए छुटकारा पाकर परमात्मा के शाश्वत प्रेम में सदा के लिए समा सकें।

सिर्फ़ अपनी कोशिशों के दम पर इस कार्य को पूरा कर पाना नामुमकिन लग सकता है और ऐसा सच में है भी लेकिन हम अकेले नहीं हैं। हमारे

पास एक ऐसा साधन है जिससे आत्मा अपने रुख़ को दुनिया की ओर से मोड़कर निज-घर वापसी का सफ़र तय कर सकती है।

भक्ति सतगुरु और शिष्य के बीच एक अद्भुत रिश्ता क़ायम करती है। यह हृदय और मन की एक अवस्था है। यह हमारे अंदर प्रेम और विरह पैदा करती है और विश्वास, हुक्म मानने, अनुशासन, धैर्य, समर्पण और कृतज्ञता को बढ़ाती है। भक्ति हमें अपने सतगुरु की हिदायतों का पालन करने और इस मार्ग पर चलने के लिए हमें समय और ध्यान देने के लिए प्रेरित करती है।

सिमरन ऐसी बहुमूल्य दात है जिसका लाभ हम सिर्फ़ भजन-सिमरन के वक़्त ही नहीं बल्कि पूरा दिन उठा सकते हैं। जितने ज़्यादा प्रेम और कृतज्ञता भरे दिल से हम सिमरन करते हैं, यह हमारे लिए उतना ही उपयोगी सिद्ध होता है। सिमरन के इस उपहार के लिए ही नहीं बल्कि भजन-सिमरन के पूरे अभ्यास के लिए हमें बहुत ज़्यादा आभारी होना चाहिए। भजन-सिमरन करने से प्रेम और श्रद्धा बढ़ती है। अगर हम हर बार भजन-सिमरन पर बैठते समय सतगुरु द्वारा दिए गए इस मौक़े के लिए आभार प्रकट करें तो हम पूरा दिन प्रेम और कृतज्ञता से भरे रहते हैं।

हम जानते हैं कि हमें इस दुनिया से मुक्त करवाकर निज-घर पहुँचाने के लिए जितने अधिक यत्न की ज़रूरत है, हमारी कोशिशें उसकी तुलना में रत्ती-भर भी नहीं। असल में होना तो सब कुछ सतगुरु की दया-मेहर से ही है लेकिन हम अपनी तरफ़ से कृतज्ञता, प्रेम और विश्वास अर्पित कर सकते हैं, इस बात को जानते हुए कि उन्होंने हमारी आत्मा को निज-घर ले जाने की ज़िम्मेदारी ली है और एक न एक दिन वह हमें वहाँ ज़रूर ले जाएँगे।

> *जिन पर वह परमात्मा अपनी दया-मेहर करना चाहता है, उनको मनुष्य-जन्म की दात मिलती है। इन भाग्यशाली जीवों में से वह चुने हुए जीवों का ध्यान अपनी ओर खींचता है। ये ही वे आत्माएँ हैं जिन्हें वह कुलमालिक अपनी असीम कृपा द्वारा माया के भ्रमजाल से छुड़ाना चाहता है।*
>
> *जीवत मरिए भवजल तरिए*

अपने सच्चे स्वरूप की तलाश

वर्ष 1990 में, जब नासा का अंतरिक्ष यान वॉयेजर I अंतरिक्ष में जा रहा था तब उसने अपना कैमरा पृथ्वी की ओर घुमाया और लगभग छह अरब किलोमीटर दूर से पृथ्वी की तस्वीर ली। इस तस्वीर में पृथ्वी विशाल अंतरिक्ष के गहन अंधकार में एक छोटे-से नीले बिंदु के रूप में दिखाई दी। अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने इस तस्वीर को 'पेल ब्लू डॉट' का नाम दिया।

अगर हमारी पृथ्वी इस पूरे ब्रह्मांड की तुलना में इतनी छोटी है तो उस छोटे-से 'पेल ब्लू डॉट' पर रहनेवाला हम में से हर एक व्यक्ति इस ब्रह्मांड की अवर्णनीय विशालता की तुलना में एक सुई की नोक से भी छोटा है। हालाँकि हम सब यह जानते हैं फिर भी हम अपने आप को कुछ ज़्यादा ही अहम समझते हैं।

हमें ऐसा क्यों लगता है? संत-महात्मा समझाते हैं कि यह हमारी झूठी 'हौमैं' या अहंकार है। वे यह भी कहते हैं कि यही हौमैं परमात्मा रूपी रचयिता के पास वापस पहुँचने में सबसे बड़ी रुकावट है। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी ने इसके बारे में इस तरह समझाया था:

> *परमात्मा और हमारे बीच हौमैं की रुकावट है। यही असली और बड़ी रुकावट है। जब तक हौमैं की रुकावट को दूर नहीं करते, परमात्मा से मिलाप का सवाल ही पैदा नहीं होता।*
>
> *संत संवाद*, भाग 1

आत्मा कभी उस रचयिता का हिस्सा हुआ करती थी जो परम आनंद का स्रोत है। लेकिन मन का साथ लेने के कारण यह इस रचना में फँस गई। बहुत-सी योनियों में जन्म लेने के बाद मन ने हौमैं की वजह से अपनी एक अलग हस्ती क़ायम कर ली है। जिससे यह आत्मा पर हावी हो गया और इस वजह से यह भ्रम पैदा हो गया कि आत्मा की हस्ती परमात्मा से अलग है।

अगर हम इस क़ैद से मुक्त होना चाहते हैं तो यह समझना बहुत ज़रूरी है कि हम मन द्वारा बनाई गई अपनी उस छवि से बिल्कुल अलग हैं। सतगुरु का इस संसार में आने का मक़सद हमारी आत्मा को जगाना और हमें इस बात का एहसास दिलाना है कि हमारा असल स्वरूप आत्मा है। उसका निवास इस शरीर के अंदर है और साथ ही वे हमें एक ऐसी व्यावहारिक युक्ति सिखाने के लिए आते हैं जिससे हम पहचान सकें कि हम असल में कौन हैं।

लेकिन हम अपनी आत्मा के बारे में जानते ही क्या हैं? कभी-कभी हमें थोड़ा-बहुत एहसास होता है कि हमारा असल वजूद यह स्थूल शरीर नहीं है। हमारा असल वजूद इससे अलग है – वह है अमर-अविनाशी आत्मा। कभी-कभी हमें यह एहसास भी होता है कि सतगुरु हमारे जैसे इनसान नहीं हैं जैसे कि वह हमें दिखाई देते हैं बल्कि उनका असल स्वरूप उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी पुस्तक डाई टू *लिव* में फ़रमाते हैं:

> *यह शरीर तुम्हारा असल वजूद नहीं है। सतगुरु का असल स्वरूप भी शरीर नहीं है। तुम्हारा असल वजूद आत्मा है और सतगुरु का असल स्वरूप शब्द है, वर्ड है। ...लेकिन अंत में वह नूरी स्वरूप शब्द ही बन जाता है और आप रंग-रूप और आकार रहित निर्मल आत्मा बन जाते हैं। और तब आत्मा शब्द में लीन हो जाती है।*

सच तो यह है कि हम अब भी हौमैं के अधीन होकर कर्म कर रहे हैं। हमें इस बात का ज़रा भी अंदाज़ा नहीं है कि हम आत्मा हैं जो सतगुरु के शब्द स्वरूप में समाकर उनमें अभेद हो सकती है। अपनी हौमैं और उस से पैदा हुए विकारों के कारण हमें इस बात का एहसास नहीं होता। महाराज जगत सिंह जी ने हौमैं को "अत्यंत निकृष्ट प्रकार का स्वार्थ" कहा है जिसकी वजह से हम सोचते हैं कि हम कभी ग़लती नहीं कर सकते।

सतगुरु हमें समझाते हैं कि हौमैं को ख़त्म करने का एक ही तरीक़ा है–भजन–सिमरन। नामदान के समय किए गए वायदे के मुताबिक़, हम हर सुबह अभ्यास में बैठकर अपने चंचल मन को स्थिर करने और अपने ध्यान को तीसरे तिल पर टिकाने का प्रयास करते हैं। हो सकता है कि हम कई वर्षों से इस कोशिश में लगे हों और हमें कोई रूहानी तरक़्क़ी होती दिखाई न दे। लेकिन निष्फल प्रतीत होनेवाला भजन–सिमरन असल में कभी व्यर्थ नहीं जाता। सतगुरु चाहते हैं कि हम कोशिश करें–उन्हें हमारा हुक्म में रहना पसंद है और वह हमें संघर्ष करते रहने के लिए प्रेरित करते हैं।

शायद यह उनकी दया–मेहर ही है कि अंतत: भजन–सिमरन करना ही हुक्म मानने और मार्ग पर दृढ़ रहने की कसौटी है। ज़रा सोचें कि अगर हर सुबह हमें यह पता चल जाए कि हम कितनी रूहानी तरक़्क़ी कर चुके हैं तो हमारी हौमैं कितनी बढ़ जाएगी। यह बहुत ही ख़तरनाक होगा–यह सचमुच हमारी हौमैं को बढ़ा देगा। अगर हम वाक़ई अपने असल घर वापस लौटना चाहते हैं तो हौमैं को नाश करना ही उचित है।

यह सच है कि हम अपनी कोशिशों द्वारा इस हौमैं से छुटकारा नहीं पा सकते। यह सिर्फ़ भजन–सिमरन द्वारा ही मुमकिन है और ख़ासकर शायद उस भजन–सिमरन से जिसे हम 'निष्फल' समझते हैं। इनसान होने के नाते हमारा दायरा बहुत सीमित है। महाराज जी ने फ़रमाया है कि सब कुछ परमात्मा की दया–मेहर से ही होता है।

सतगुरु ही हमें निज–घर ले जा सकते हैं–हम तो सिर्फ़ उनके हाथों में कठपुतली हैं। अगर हम इस बात को समझ जाएँ और स्वीकार कर लें तो हम निश्चिंत और आज़ाद महसूस कर सकते हैं। तब न तो निराशा की कोई वजह होगी और न ही पश्चाताप की क्योंकि हमें इस बात का एहसास होने लगेगा कि सब कुछ उन्हीं का है और वही हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं तब हम ख़ुद को दोषी ठहराना, अपने आप को कोसना और दूसरों से उम्मीदें रखना छोड़ देते हैं।

महाराज जी हमें समझाते हैं कि गुरुमुख और मनमुख में सिर्फ़ इतना ही फ़र्क़ है, गुरुमुख को परमात्मा की पहचान हो चुकी है, वह जानता है कि वह एक कठपुतली है, उसके हाथ में कुछ भी नहीं है। मनमुख सोचता है कि सब कुछ वह ख़ुद कर रहा है।

एक समय था जब हम रचयिता का हिस्सा थे, उसके प्रकाश, प्रेम और पूर्णता का ही रूप थे। हौमैं की इन परतों के कारण इनसान ने क्या कुछ खो दिया है इस बात पर प्रकाश डालते हुए महाराज सावन सिंह जी फ़रमाते हैं:

> *इनसान की हालत भी बहुत हद तक एक ढकी हुई लालटेन के समान है। उसके अन्दर परमात्मा का नूर है, पवित्र जीवन, ज्ञान और आनन्द है, लेकिन मन और माया के पर्दों ने इसके प्रकाश को मन्द कर दिया है और इनसान अन्धकार में भटकता फिर रहा है। उसका असली रूप विकृत हो गया है और उसने तर्क, बुद्धि और अन्त:प्रेरणा की शक्ल ले ली है। हम परम आनन्द को खोकर उसकी जगह क्षणिक दु:ख-सुख का अनुभव कर रहे हैं।*
>
> परमार्थी पत्र, भाग 2

हौमैं की जिन परतों की वजह से हम इस रचना में क़ैद हैं उन्हें हटाने की कोशिश ही इस जीवन का असल मक़सद है। अब हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम उन सीमित दायरों से बाहर निकल आएँ, जिनकी वजह से हम कई जन्मों से इस संसार में क़ैद हैं ताकि हम अपने असीम, अनंत-अपार स्वरूप की पहचान कर पाएँ। यह सर्वोच्च क़िस्म की रूहानी जागृति है जिसका होना इस बात का संकेत है कि हमने लड़ाई जीत ली है। हम पर नामदान की बख़्शिश इसीलिए की गई है ताकि हम अपने असली रूहानी स्वरूप को पहचान सकें।

हमें समझाया जाता है कि अपने असल स्वरूप की पहचान के बाद परमात्मा की पहचान अगला क़दम है। यह युगों-युगों से जारी लंबे सफ़र

के ख़त्म होने का संकेत है ताकि हमारी आत्मा वापस अपने असल स्रोत में समा सके क्योंकि उसकी हौमैं का नाश हो चुका है।

लेकिन हौमैं आसानी से पीछा नहीं छोड़ती और इसे ख़त्म करना आसान नहीं है। अगर यह सिर्फ़ हम पर निर्भर होता तो हम कभी भी हौमैं को ख़त्म नहीं कर पाते। धीरे-धीरे, अनुभव प्राप्त होने पर हमें इस बात का एहसास होने लग जाता है और फिर हम ख़ुद को सतगुरु के सुपुर्द कर देते हैं। हम उनकी रज़ा में रहने लग जाते हैं और फिर हमें किसी चीज़ की चाह नहीं रहती। महाराज जी के वचन हैं:

> *हौमैं को मिटाना ही सतगुरु को आत्म-समर्पण करना है। जब तक हौमैं है तब तक हम समर्पण नहीं करते। हम मन के अधीन होते हैं, लेकिन जब हम हौमैं को ख़त्म कर लेते हैं तब हम समर्पण करते हैं। फिर सतगुरु ही सब कुछ होते हैं।*
>
> *संत संवाद*, भाग 3

सिर्फ़ प्यार में ही हमारे अंदर किसी दूसरे के आगे झुकने और उसकी सेवा करने की चाहत पैदा होती है। जैसा कि महाराज जी समझाते हैं, सतगुरु के प्रेम द्वारा हमारे अंदर से हर तरह की हौमैं ख़त्म हो जाती है। फिर हम ख़ुद-ब-ख़ुद हुक्म में रहने लगते हैं और समर्पण कर देते हैं।

संतमत की अनेक पहेलियों और क़रामातों में से एक सतगुरु के प्रति प्रेम है। महाराज जी समझाया करते थे कि यह असीम प्रेम परमात्मा की दात है जिसे लफ़्ज़ों में बयान नहीं किया जा सकता और यह सतगुरु की दया-मेहर से प्राप्त होता है। आप फ़रमाते थे कि भजन-सिमरन द्वारा ही यह प्रेम पैदा होता है और गहरा होता है जो हमें अपने वश में कर लेता है और हम सतगुरु की तरफ़ खिंचे चले जाते हैं।

अब तक, आत्मा की वापस परमपिता के पास लौटने की तड़प मन, माया और अपने अलग वजूद के भ्रम के कारण दबी हुई थी। लेकिन अब यह तड़प तीव्र होने लगती है। हमारी आत्मा उस आनंद और ख़ुशी को,

जिसे यह कभी अनुभव करती थी, फिर से पाने के लिए तड़प उठती है। महाराज जी के इन वचनों द्वारा हमें प्रेरणा मिलती है:

> परमात्मा में समाने के परम आनंद को शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। उस अवस्था में अपनी हस्ती, अलग चेतना या और किसी बात का ध्यान नहीं रहता। उस अवस्था में सिर्फ़ प्यार ही प्यार, आनंद ही आनंद होता है, क्योंकि परमात्मा में समाकर हम परमात्मा ही बन जाते हैं और तब केवल वही होता है, वही सब कुछ है।
>
> संत संवाद, भाग 1

> परमात्मा हमेशा रहने वाला है, ज्ञान और आनन्द है–वह शक्ति, ज्ञान और प्रेम का भण्डार है। इसी भण्डार या सार–तत्त्व की एक चिनगारी हमारी आत्मा है, जो मन और माया के पर्दों में लिपटकर इनसान या जीवात्मा का रूप धारण किये हुए है। अगर हमारे ऊपर से मन और माया के पर्दे उतर जायें तो आत्मा निर्मल हो जायेगी और परमात्मा को पहचानने के क़ाबिल हो जाएगी।
>
> परमार्थी पत्र, भाग 2

* * *

ज़िंदगी को सरल रखना

सदियों से ज्ञान और स्थूल जगत के विभिन्न पहलुओं को समझने की कोशिश में लगे खोजियों ने हमें बहुत-से ऐसे नए आविष्कारों से हैरान किया है जिनके मुमकिन होने की हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। फिर भी वे ख़ुद इस बात को स्वीकार करते हैं कि अभी बहुत कुछ सीखना बाक़ी है। यह एक कभी न ख़त्म होनेवाला प्रयास है।

और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमारी तरफ़ से की जानेवाली निरंतर खोज और इसके फलस्वरूप हुए कई नए आविष्कार इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि हमारी समझ और बुद्धि हमेशा सीमित रहेगी। इस बारे में इस तरह से सोचिए: आज हमारे पास जो ज्ञान है वह बीत चुके कल में हमारे पास नहीं था और आनेवाले कल में हमारे पास जो ज्ञान होगा वह आज हमारे पास नहीं है। चाहे हमारे ज्ञान का दायरा कितना भी विस्तृत क्यों न हो जाए फिर भी हमारा ज्ञान सीमित है।

उदाहरण के लिए, हमारे लिए यह समझ पाना नामुमकिन है कि समय का कोई अस्तित्व नहीं है या इस ब्रह्मांड का कोई अंत नहीं है। ऐसी धारणाएँ हमारी सीमित बुद्धि और समझ को दर्शाती हैं।

जब रूहानियत की बात आती है तब हमें लग सकता है कि हमारे पास उतने ज़्यादा जवाब नहीं हैं जितने ज़्यादा सवाल हैं। लेकिन जब संत-महात्मा हमें उलझन में देखते हैं तब वे सही दिशा दिखाकर, उस सही राह पर चलने के लिए हमारा मार्गदर्शन करते हैं। वे सब सरल रखने के लिए कहते हैं। वे समझाते हैं: "सिर्फ़ एक अच्छे इनसान बनो।" इससे सरल और क्या हो सकता है?

हर व्यक्ति सही और गलत के बीच का अंतर जानता है। सही काम करने और एक अच्छा इनसान बनने का अर्थ है अपने चार रूहानी वायदों को बिना किसी समझौते के पूरा करना। इसका अर्थ है इन महत्त्वपूर्ण नियमों का पालन करना:

1. शाकाहारी भोजन जिसमें दूध और दूध से बने पदार्थ शामिल हैं
2. शराब, लत लगाने वाले मादक पदार्थों और तंबाकू का सेवन न करना
3. निर्मल नैतिक जीवन जीना
4. हर रोज़ ढाई घंटे भजन-सिमरन करना।

यदि हम इन नियमों के मुताबिक़ जीवन जीते हैं तो जीवन सरल और निर्लेप होकर जीना आसान हो जाता है। *सॉन्ग ऑफ़ सॉन्गस* कविता में कवि महसूस करता है: "तुम स्वयं शांत हो कर, चुपचाप बैठकर निरंतर अशांत दुनिया को देख रहे हो।" इसका अर्थ उस मधुमक्खी की तरह बनना है जो मर्तबान के किनारे पर बैठकर, उसमें गिरे और फँसे बिना शहद की मिठास का आनंद लेती है। जब हम इस रचना के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं तब हम जीवन के इस नाटक से बेलाग हो कर अपनी भूमिका प्रेम और निष्ठा के साथ निभा सकते हैं।

जब हम सतगुरु द्वारा दी गई नसीहत को याद रखते हैं तब ज्ञान के होने या न होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। जब तक हम इस रचना में हैं तब तक रोटी, कपड़ा और मक़ान हमारी बुनियादी ज़रूरतें हैं। इन्हें पूरा करने और अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह से निभाने के लिए हमें काम-काज करना चाहिए, लेकिन इस काम-काज को वक़्त देते हुए हमें किसी भी क़ीमत पर अपनी रूहानी ज़िम्मेदारियों को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए।

हमारा जन्म हमारे कर्मों द्वारा नियत समय और स्थान पर हुआ है और हम उसे बदल नहीं सकते। चाहे हम गरीब हों या अमीर, बीमार हों या स्वस्थ-हमारे हालात जो भी हों-हमें फिर भी सतगुरु के कहे अनुसार अच्छे इनसान बनने की कोशिश करनी चाहिए। हम अपनी ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए साथ ही साथ संतमत के उपदेश पर पूरा ध्यान दे सकते हैं। इससे हमें यक़ीनन सुख और संतोष प्राप्त होगा।

भविष्य के बारे में चिंता करने की भी कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि सतगुरु ने हमारे कर्मों के लेखे-जोखे की ज़िम्मेदारी ले ली है। महाराज सावन सिंह जी पुस्तक परमार्थी पत्र, भाग 2 में फ़रमाते हैं:

> *आपकी चिन्ता और परेशानी गुरु की चिन्ता और परेशानी है। इन सब चिन्ताओं को गुरु के हवाले कर दीजिए और बेफ़िक्र होकर गुरु के लिए प्रेम बढ़ाइए, जो आपका फ़र्ज़ है।*

सतगुरु ने हमें पूरा यक़ीन दिलाया है कि वे कभी भी हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे। आइए उनकी इस बात पर भरोसा करते हुए अपना जीवन सरल बनाएँ यानी कि अपने दुनियावी और रूहानी कर्तव्यों का पालन करते हुए एक अच्छे इनसान बनें।

* * *

और कुछ भी मायने नहीं रखता

हम सब इनसानों की कमज़ोरी है कि हम जीवन के नाटक और मुसीबतों में इतने उलझ जाते हैं कि हम सबसे अहम चीज़ को नज़रअंदाज़ कर देते हैं। रूहानियत के खोजी होने के नाते, हमारी असल प्राथमिकता क्या है? हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी पुस्तक *संत संवाद*, भाग 2 में फ़रमाते हैं:

> *हम परमात्मा को हमेशा वही वक़्त देने की कोशिश करते हैं जब हमारे पास कोई दूसरा काम नहीं होता। जब हम समाज द्वारा, अपने बच्चों द्वारा, अपने दोस्तों द्वारा ठुकरा दिये जाते हैं, तब हम अपना वक़्त परमात्मा की भक्ति में लगाना चाहते हैं, जबकि हमें अपने जीवन का सबसे अच्छा वक़्त परमात्मा को देना चाहिये।...मनुष्य-जन्म का असली मक़सद परमात्मा के पास वापस जाना है, इसलिये हमें इस मक़सद को हमेशा याद रखना चाहिये। इस मक़सद को पहल देनी चाहिये, बाक़ी सब काम अपने आप होते रहेंगे।*

हम अपनी पूरी ज़िंदगी रूहानियत के लिए सही समय के इंतज़ार में बिता देते हैं। शायद हमें यह लगता है कि जीवन में कभी न कभी ऐसे उचित हालात होंगे जब हम अपने रूहानी मक़सद को पूरा कर पाएँगे। ऐसी सोच के कारण हम इसे टालते ही रहते हैं।

हम अकसर कम महत्त्वपूर्ण चीज़ों को निपटाने में ज़रूरत से ज़्यादा समय बिता देते हैं–जैसे कि हमारे कर्तव्य और ज़िम्मेदारियाँ, जिन्हें वक़्त देना ज़रूरी होता है, यहाँ तक कि हम भजन-सिमरन को प्राथमिकताओं की सूची में सबसे आख़िरी स्थान पर रखते हैं। हम सोचते हैं कि जब हम बाक़ी सब कुछ निपटा लेंगे तब भजन-सिमरन का आनंद लेंगे, लेकिन हमारा पूरा समय कर्तव्यों, ज़िम्मेदारियों और सांसारिक सुखों को भोगने में व्यतीत हो जाता है और दिन ख़त्म होने पर हमें यह एहसास होता है

कि हमें भजन–बंदगी के लिए तो समय ही नहीं मिला। जबकि असल में भजन–बंदगी के अलावा और कुछ भी मायने नहीं रखता।

सभी संत–सतगुरुओं ने सत्संगी के जीवन में भजन–सिमरन की अहमियत पर बहुत अधिक ज़ोर दिया है। यह हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता होना चाहिए। बाक़ी सब कुछ इसके बाद आता है। कम अहमियत रखने वाली चीज़ों के बजाय ज़्यादा महत्त्वपूर्ण चीज़ों को पहल देनी चाहिए। इसीलिए हर बार जब हम भजन–सिमरन के लिए बैठते हैं तब हमें इस बात का एहसास होना चाहिए कि उस समय हम वह ज़रूरी काम कर रहे होते हैं जिसके लिए हमें यह इनसानी जामा मिला है। भजन–सिमरन किए बिना हम जन्म–मरण के चक्र में ही फँसे रहेंगे। एक बार जब मौजूदा सतगुरु हम पर नामदान की बख़्शिश कर देते हैं फिर भजन–बंदगी से ज़्यादा अहम कुछ भी नहीं होता।

हम सब जानते हैं कि नियमित रूप से भजन–सिमरन करते रहना आसान नहीं होता। भजन–सिमरन में ऐसे दौर भी आते हैं जब यह बिलकुल नीरस लगता है और इसे करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। सालों–साल हम इस मार्ग पर आहिस्ता–आहिस्ता चलते जाते हैं और हमें कोई रूहानी तरक़्क़ी दिखाई नहीं देती। कभी–कभी तो हम यह सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। फिर भी, रोज़मर्रा का हमारा यह प्रयास व्यर्थ नहीं जाता क्योंकि इसके एवज़ में सतगुरु लगातार हम पर दया–मेहर बरसाते रहते हैं।

संघर्ष और नीरसता के इस दौर में से गुज़रते हुए हमें निराश नहीं होना चाहिए। रूहानी ख़ुशी का महसूस होना ज़रूरी नहीं कि रूहानी तरक़्क़ी का ही संकेत हो। हो सकता है कि जब हमारा मन बेचैन हो और हम फिर भी भजन–सिमरन करते रहें तब हम ज़्यादा तरक़्क़ी कर रहे हों। बेहतर यही है कि हम सतगुरु पर और ख़ुद पर पूरा यक़ीन रखें कि हमें सफलता ज़रूर मिलेगी। अगर हम इसे करने के योग्य नहीं होते तो सतगुरु ने हमें नामदान की बख़्शिश ही नहीं करनी थी।

किसी भी हालात में, हमें यह नहीं पता चलता कि हम कितनी तरक़्क़ी कर रहे हैं। महाराज सावन सिंह जी *परमार्थी पत्र*, भाग 2 में अपने एक शिष्य को समझाते हैं:

> *हर सच्चे अभ्यासी की आत्मा अन्दर तरक़्क़ी कर रही होती है, भले ही उसे इस बात का पता न चले। हाँ, सत्संगी की आत्मा ब्रह्माण्ड में जा सकती है भले ही सत्संगी इसके बारे में सजग न हो।*

सतगुरु समझाते हैं कि हमारा नज़रिया आशावादी होना चाहिए। हमारे नज़रिए का हमारे रूहानी जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? कई साल भजन-सिमरन करने पर भी थोड़ी-बहुत रूहानी तरक़्क़ी होने पर शायद हम यह मानने लग जाएँ कि इसमें सफल होना इतना आसान नहीं है। इसीलिए यह समझना ज़रूरी है कि भजन-सिमरन के प्रति हमारा नज़रिया ही यह तय करता है कि हम कितनी रूहानी तरक़्क़ी करेंगे। जब हम भजन-सिमरन में बैठते हैं तब हम मालिक की रज़ा में रहना, दुनियावी चीज़ों को जाने देना और निर्लेप होना सीख रहे होते हैं। यह उस परम शक्ति के हुक्म में रहना है, जिसे हम 'मैं' से कहीं अधिक महान मान चुके हैं।

भजन-सिमरन अंतर में बदलाव लाता है। भजन-बंदगी करते समय ख़याल को भजन-सिमरन में रखना सबसे अहम है। फिर चाहे कुछ भी हो जाए, हम अपना संतुलन नहीं खोते हैं और हम पर उन तूफ़ानों का कोई असर नहीं होता जिनका सामना हमें इस जीवन में करना पड़ता है। लेकिन हमें कभी भी कोशिश करना नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि धीरे-धीरे होनेवाला यह आंतरिक बदलाव ही पूरे बाहरी कायाकल्प का आधार है।

अगर हमें नामदान की बख़्शिश हो चुकी है और हमने भजन-सिमरन नहीं किया या हमने इसे करना शुरू तो किया था लेकिन इसे करना बंद कर दिया है तो हमें सकारात्मक सोच और व्यावहारिक नज़रिए के साथ फिर से भजन-सिमरन करने के लिए दृढ़ संकल्प लेना होगा। अहम यह है कि हम जितना वक़्त दे सकते हैं, कम से कम उतना वक़्त देकर शुरुआत

तो करें। फिर धीरे-धीरे और दृढ़ता से हम उस समय को बढ़ा सकते हैं बजाय इसके कि हम एक या दो दिन पूरे ढाई घंटे भजन-सिमरन को दें और फिर इसे कम करते हुए दस मिनट पर आ जाएँ या फिर बिलकुल ही भजन-सिमरन न करें। यह तरीक़ा ठीक नहीं है। सही तरीक़ा यह है कि इसे सहज भाव से नियमपूर्वक करते रहें, थोड़ा-थोड़ा समय बढ़ाते जाएँ।

कुछ दिन ऐसे भी हो सकते हैं जब हम नियमपूर्वक भजन-सिमरन को वक़्त नहीं दे पाते क्योंकि हमारा शरीर साथ नहीं देता। ऐसे दिनों में हमें कम से कम थोड़ी देर के लिए बैठने की कोशिश ज़रूर करनी चाहिए। हमें किसी भी दिन भजन-सिमरन में नाग़ा नहीं डालना चाहिए। अगले दिन हमें फिर से पहले की तरह भजन-सिमरन करना चाहिए। वर्ना हो सकता है कि हमारे कई दिन, हफ़्ते, महीने या यहाँ तक कि कई साल बिना भजन-सिमरन किए बीत जाएँ। इसीलिए आदत डालना बहुत ज़रूरी है।

हो सकता है कि भजन-सिमरन के दौरान हम अपने ख़याल को अच्छी तरह से एकाग्र न कर पाएँ और मन लगातार भटकता रहे लेकिन महत्त्वपूर्ण यह है कि हमने भजन-सिमरन को अपनी जीवनशैली का हिस्सा बनाना है। हम जितना ज़्यादा भजन-सिमरन करते हैं यह उतना ही बेहतर होता जाता है। महाराज जी हमें अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करने की प्रेरणा देते हैं चाहे हम ख़याल को पूरी तरह से एकाग्र न भी कर पाएँ। अगर एकाग्रता न भी हासिल हो पाए और हमारा मन भटकता रहे तो भी हमें निराश नहीं होना चाहिए।

इस समय हम चेतना के जिस स्तर पर हैं, हमारा यह स्वीकार करना कि सब कुछ हमारे सतगुरु के हाथ में है, महज़ एक ख़याल है। जब हमारे अंदर सतगुरु का नूरी स्वरूप प्रकट हो जाता है तब हमें इस बात का पक्का यक़ीन हो जाता है कि सब कुछ उनके हाथ में है। तब हमें इस बात की समझ आती है कि ज़िंदगी हमारे बारे में नहीं है। परमात्मा ही हमारे ज़रिए सब कुछ अनुभव कर रहा है। परमात्मा हमारे अवगुणों को नहीं बल्कि

हमारे रूहानी सामर्थ्य को देखता है। वह सिर्फ़ यही चाहता है कि हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लें।

हमारा अहंकार उन बहुत-सी बाधाओं में से एक है जो हमें सच्चे प्रेम और परमात्मा के साथ एकता का अनुभव नहीं होने देता। जब हम अपने आप को परमात्मा से अलग समझते हैं तब द्वैत पैदा होता है। जहाँ द्वैत है, वहाँ अंहकार है और अहंकार का कारण यह अज्ञानता है कि हम जानते ही नहीं कि हम असल में कौन हैं। हम अपने असल वजूद को भूल चुके हैं। हमारा अहंकार वह मुखौटा है जिसने हमारे असल स्वरूप को छुपा दिया है। जब तक हम अहंकार के इस मुखौटे को उतार नहीं लेते, हम अपने सच्चे स्वरूप को पहचानने के क़ाबिल नहीं बन पाते।

परम चेतना के महासागर में समा जाने पर हम अपनी पहचान नहीं खो देते बल्कि हम अपने असल स्वरूप को पहचान लेते हैं कि हम निर्मल चेतना, पूर्ण आनंद और असीम प्रेम का रूप हैं। हमारी हस्ती है ही क्या, जिसे खो देने से हम इतना डरते हैं? इस अंधकारमय दुनिया में, अपने असल वजूद से जुदा होकर संतुष्ट रहने में क्या समझदारी है जबकि हम अमर-अविनाशी बन सकते हैं?

अपने बारे में सोचने के बजाय सिमरन करने से और भजन-सिमरन के समय अपने अहं को सतगुरु के आगे समर्पित कर देने से एक न एक दिन द्वैत की दीवार ख़ुद-ब-ख़ुद ढह जाती है। भ्रम का पर्दा हट जाता है और हमें अनुभव हो जाता है कि हम असल में कौन हैं। जब हम अपने प्रियतम को लगातार याद करते हैं तब हमारे अंदर उसके लिए लगाव और प्रेम पैदा होने लगता है और हमारे अहं या आपाभाव का नाश हो जाता है। तब हमें समझ आती है कि सब कुछ वही कर रहा है।

अपनी अलग हस्ती को मिटा देना ही प्रेम का बुनियादी उसूल है। प्रियतम की इच्छा ही प्रेमी की इच्छा बन जाती है। प्रेमी का पूरा वजूद प्रियतम में समा जाता है। जब हमारा अपना ही कोई वजूद बाक़ी नहीं रहा तब इच्छाएँ कहाँ से बाक़ी रह जाएँगी?

परमात्मा तक पहुँचने के लिए हमें सिर्फ़ तीसरे तिल तक पहुँचने की कोशिश करनी चाहिए। उसके बाद जैसा कि हमें बताया गया है, बाक़ी सब कुछ परमात्मा स्वयं करता है। वह हमारे अंदर इतनी विरह और जुदाई की तड़प पैदा कर देता है और हम पर ऐसी दया-मेहर बरसाता है कि आत्मा के पास परमात्मा की ओर खिंचे चले जाने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। भजन-सिमरन के महत्त्व यानी कि अपनी अलग पहचान खोकर परमात्मा का रूप बन जाने की प्रक्रिया के बारे में, आओ हुज़ूर महाराज जी के इन शब्दों को याद करें:

> *संतमत के अनुसार अपने जीवन को ढालें और भजन-सुमिरन करते रहें। बस, इसी की ज़रूरत है। भजन-सुमिरन से ही प्रेम उत्पन्न होगा, इसी से नम्रता और समर्पण की भावना पैदा होगी। सब कुछ भजन-सुमिरन से ही होगा।*
>
> *जीवत मरिए भवजल तरिए*

* * *

भजन-सिमरन क्यों करना है?

जब संतमत के चार सिद्धांतों में से भजन–सिमरन सबसे महत्त्वपूर्ण है तब यह प्रश्न पूछना अजीब–सा लग सकता है, "भजन–सिमरन क्यों करना है?"

ध्यान–साधना कई प्रकार की है और संतमत इनसे इसलिए अलग है क्योंकि इसमें हर दुनियावी विचार को छोड़कर अपने ख़याल को पूरी तरह से सिमरन पर एकाग्र करना होता है। यही सिमरन हमें अंदर शब्द–गुरु तक ले जाता है जोकि परमपिता परमात्मा का ही साकार रूप है। इसमें अपने अहं को त्यागने के साथ–साथ दुनिया की उन सभी वस्तुओं से लगाव न रखने पर ज़ोर दिया जाता है जो इस समय हमें बहुत प्रिय हैं। फलस्वरूप, जब हमारी आत्मा परमात्मा में समा जाती है तब हमें सदा के लिए मुक्ति और परम आनंद की प्राप्ति हो जाती है और हम पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

इसलिए भजन–सिमरन करने की अहम वजह यह है कि आत्मा आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाए और इस रचना से ऊपर उठकर रचयिता के साथ मिलाप कर सके। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी समझाते हैं कि किस तरह जीव परमात्मा में समाता है:

> *जब मन शब्द की सहायता से अपने स्रोत त्रिकुटी यानी दूसरे पद में वापस चला जाता है, तब आत्मा मन के पंजे से आज़ाद हो जाती है और मन आत्मा को नीचे की ओर नहीं खींच सकता। उस अवस्था में आत्मा तीनों तरह के कर्मों से ऊपर उठ जाती है। फिर यह प्रकाशमान हो जाती है और यह निर्मल तथा पूर्ण हो जाती है। ऐसा होने पर ही आत्मा वापस जाकर परमात्मा में विलीन हो सकती है।*
>
> संत संवाद, भाग 1

भजन–सिमरन करने का एक अन्य कारण उस वायदे को निभाना है जो हमने नामदान के समय अपने सतगुरु से किया था। नामदान के समय

हमने हर रोज़ ढाई घंटे भजन-सिमरन करने का वायदा किया था। उसे पूरा करने के लिए हम रोज़ाना दो घंटे पाँच नाम का सिमरन और आधा घंटा शब्द-धुन को सुनने की कोशिश करते हैं। इसलिए हमें हुज़ूर महाराज जी द्वारा पुस्तक *संत संवाद*, भाग 2 में दी गई नसीहत को मानना चाहिए: "सबसे अहम तो यह है कि हमें भजन-सिमरन को पूरा वक़्त देना चाहिये और संतमत के उसूलों के साथ कोई समझौता नहीं करना चाहिये।"

हर साधक का भजन-सिमरन का अनुभव अलग होता है। कुछ लोगों को लगता है कि लफ़्ज़ों को सिर्फ़ मशीनी ढंग से दोहराना भजन-सिमरन है और उन्हें शब्द-धुन को सुनना व्यर्थ प्रतीत हो सकता है। नामदान ले चुके ऐसे कुछ जिज्ञासु यह शिकायत कर सकते हैं कि भजन-सिमरन करना नीरस और मुश्किल है और वे या तो भजन-सिमरन करना छोड़ देते हैं या इसे अनियमित रूप से करते हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे जिज्ञासुओं की रूहानी तरक़्क़ी में विलंब होता है और धीरे-धीरे वे अपने वायदों से चूक सकते हैं।

दूसरी तरफ़, कुछ ख़ुशक़िस्मत शिष्य नामदान प्राप्त हो जाने के बाद जल्दी ही अपने ख़याल को एकाग्र कर लेते हैं और उन्हें शब्द-धुन स्पष्ट सुनाई देनी शुरू हो जाती है। ऐसे शिष्य प्रेम के असल मायनों को जान लेते हैं और वे अनुशासन, त्याग, समर्पण और भक्ति के महत्त्व को समझ जाते हैं। ऐसा इसलिए नहीं होता कि उन्हें सिर्फ़ इन धारणाओं की समझ आ जाती है बल्कि इसका कारण यह होता है कि वे इन्हें अनुभव करते हैं, इनका अभ्यास करते हैं और इनके अनुसार जीवन जीते हैं।

इस अनुभव द्वारा मिलनेवाले आनंद से उन्हें अधिक से अधिक भजन-सिमरन करने की प्रेरणा मिलती है, जोकि उनकी ख़ुशी का स्रोत है। ऐसे शिष्य परमात्मा की रज़ा में रहते हैं और रूहानी तौर पर तरक़्क़ी करते हैं क्योंकि उन्हें संसार और सांसारिक वस्तुओं में बहुत कम या फिर बिलकुल भी दिलचस्पी नहीं रहती। उन्हें ऐसी अनमोल दौलत प्राप्त हो जाती है जो रचना की हर वस्तु से श्रेष्ठ है। हुज़ूर महाराज जी ऐसी भाग्यशाली आत्माओं के बारे में फ़रमाते हैं:

> *कुछ लोगों का रूहानियत की तरफ़ झुकाव होता है और उन्हें दुनियावी बातों में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं होती; उन्हें सिर्फ़ परमात्मा के साथ लिव जोड़ने से ही ख़ुशी मिलती है।*
>
> संत संवाद, भाग 1

इसके अलावा, नामदान प्राप्त कर चुके ऐसे जिज्ञासु भी होते हैं जिन्हें बिलकुल अलग-अलग तरह के अनुभव होते हैं, उनकी तरक़्क़ी की रफ़्तार घोंघे की चाल की तरह बहुत धीमी होती है। यदि वे अपने सतगुरु से किए वायदे को पूरा करने की कोशिश करते हैं तो उनकी तरक़्क़ी जारी रहती है – चाहे उन्हें इसका बोध हो या न हो।

भजन-सिमरन करने का एक अन्य कारण सतगुरु के प्रति आभार प्रकट करना हो सकता है, जैसा कि महाराज जी कहते हैं:

> *भजन-सिमरन हमें उस मालिक का शुक्रिया अदा करने के लिये करना चाहिये। मालिक ने हमें मनुष्य का जामा बख़्शा है और ऐसा माहौल दिया है कि हम भजन-सिमरन कर सकें। इसलिये हमें भजन-सिमरन हमेशा आभार व्यक्त करने के लिये करना चाहिये।*
>
> संत संवाद, भाग 3

नामदान ले चुके जिन जीवों को नाम की इस अनमोल दात की क़द्र है, वे जागरूकता और असल मुक्ति की इस दात के लिए सतगुरु के प्रति आभार प्रकट करना चाहते हैं। अगर वे हर रोज़, आभार प्रकट करते हुए नियत समय पर भजन-सिमरन करते हैं तो यक़ीनन उनकी रूहानी तरक़्क़ी होगी।

रूहानी तरक़्क़ी को लेकर अकसर सवाल और संदेह किया जाता है क्योंकि हमें भजन-सिमरन में अपनी कोशिशों का नतीजा प्राप्त करने की बहुत अधिक उम्मीद होती है। हम सोचते हैं कि सिर्फ़ आंतरिक प्रकाश और आवाज़ का अनुभव करना ही रूहानी तरक़्क़ी की निशानी है। हम यह मान लेते हैं कि हमारे पास अपनी तरक़्क़ी को आँकने की सूझ है और साथ

ही यह भी मान लेते हैं कि थोड़ा-सा भजन-सिमरन करने पर भी हमारी तरक़्क़ी होनी चाहिए।

अपनी रूहानी तरक़्क़ी को आँकने की वजह चाहे कुछ भी क्यों न हो, हम यह भूल जाते हैं कि अनंत जन्मों के दौरान हमने कर्म और अहंकार की बहुत बड़ी दीवार खड़ी कर ली है जिसने हमारी आत्मा के प्रकाश को ढक लिया है। इस दीवार को हटाने में समय लगता है, इसके लिए कोशिश करनी पड़ती है और ध्यान देना पड़ता है।

ख़ुशक़िस्मती से, संतमत में कोई असफलता नहीं होती। महाराज जी भी यही फ़रमाते हैं:

> *जैसा कि महाराज जी (महाराज सावन सिंह जी) कहा करते थे कि संतमत में नाक़ामयाबी जैसी कोई चीज़ नहीं होती, क्योंकि आप इस राह पर चलने की कोशिश कर रहे हैं।*
>
> *संत संवाद*, भाग 3

भजन-सिमरन करने के कई अन्य कारण हो सकते हैं लेकिन सबसे श्रेष्ठ कारण प्रेम ही है। प्रेम को परिभाषित करना शायद नामुमकिन हो पर जो प्रेम का अनुभव करते हैं, वे जानते हैं कि प्रेम क्या है। प्रेम अनेक रूपों में प्रकट हो सकता है लेकिन असल में वह सिर्फ़ हमारी करनी द्वारा ही ज़ाहिर होता है। शारीरिक स्तर पर प्रेम दया, करुणा, क्षमा, नि:स्वार्थ सेवा और देखभाल के रूप में प्रकट किया जा सकता है। रूहानी स्तर पर, सतगुरु के प्रति प्रेम को भजन-सिमरन के ज़रिए प्रकट किया जाता है।

सतगुरु के प्रति हमारे प्रेम के इज़हार का इससे बेहतर कोई ज़रिया नहीं हो सकता कि हम एकाग्रचित्त होकर, समर्पण और श्रद्धा-भाव से भजन-सिमरन में बैठें। महाराज जी फ़रमाते हैं:

> *नामदान के वक़्त जब सतगुरु हमें इस मार्ग पर डालते हैं, तो हमें भजन-सिमरन को वक़्त देने की हिदायत देते हैं। अगर हम सतगुरु से सचमुच प्यार करते हैं तो हम उनका हुक्म मानेंगे। अगर हम सतगुरु के उपदेश पर अमल नहीं करते, अपने जीवन को उनके उपदेश के मुताबिक़ ढालने की कोशिश नहीं करते, तो हम यह नहीं कह सकते कि हम सतगुरु से प्यार करते हैं। यह तो सतगुरु के लिये प्यार नहीं है।*
>
> *संत संवाद, भाग 2*

जब भजन-सिमरन को प्रेम से किया जाता है तब इसके प्रति हमारा पूरा नज़रिया बदल जाता है और ऐसा महसूस होता है कि हम सतगुरु के देहस्वरूप की मौजूदगी में बैठे हैं। सतगुरु की मौजूदगी में हम यक़ीनन शारीरिक तौर पर बैठते हैं लेकिन दोनों में समानता यह है कि इसमें भी हम अपने ध्यान को अपने प्रियतम पर केंद्रित करते हैं, उनकी मौजूदगी में हम उनके सिवाए दूसरी हर चीज़ को भूल जाते हैं-ख़ुद को भी। अगर हमें अपने सतगुरु के देहस्वरूप की मौजूदगी में बैठना इतना आसान लगता है तो क्या भजन-सिमरन में बैठते हुए भी हमें ऐसा ही नहीं लगना चाहिए क्योंकि हम मानते हैं उस समय हम शब्द-गुरु की हुज़ूरी में होते हैं?

चूँकि भजन-सिमरन के दौरान हमें अंदर कुछ भी दिखाई नहीं देता इसलिए हमें ऐसा लग सकता है कि यह सतगुरु के देहस्वरूप के दर्शन करने जितना महत्त्वपूर्ण नहीं है। लेकिन यदि हम देहस्वरूप से आगे बढ़कर नूरी स्वरूप तक पहुँच जाएँ तो हमें एहसास होगा कि सतगुरु असल में किस हस्ती के मालिक हैं और हमारे परमार्थी जीवन में उनकी भूमिका कितनी अहम है।

आख़िरकार, हमारा प्रेम और सिमरन ही मायने रखता है। भजन-सिमरन में यह मायने नहीं रखता कि हमें कुछ दिखाई देता है या नहीं। महत्त्वपूर्ण यह है कि इसके बावजूद भी हम अपना सिमरन करते हैं। उन पाँच लफ़्ज़ों

को दोहराने से हमारा ख़याल तीसरे तिल पर एकाग्र हो जाता है जहाँ शब्द–गुरु मौजूद हैं। इसी एकाग्र हुए ध्यान द्वारा सतगुरु के प्रति हमारा प्रेम बढ़ता और गहरा होता है।

भजन–सिमरन ही सतगुरु के प्रति प्रेम को ज़ाहिर करने का सर्वोत्तम तरीक़ा है। हमारा अनुशासन, हुक्म का पालन और उनके प्रति समर्पण भी इसी प्रेम को दर्शाता है। यदि हम अपने सतगुरु से प्रेम करते हैं तो यह हमारे कर्मों, हमारे विचारों और उनके प्रति हमारे पूर्ण समर्पण में झलकेगा।

भजन–सिमरन क्यों करना है? सतगुरु के प्रति अपने प्रेम के कारण हम भजन–सिमरन किए बिना रह ही नहीं सकते।

> *भजन–सिमरन के बिना आप अपनी इच्छाओं से नहीं लड़ सकते। भजन–सिमरन हमारे हाथ में दी गयी ऐसी तलवार है जिसके द्वारा हम उन सब सांसारिक तृष्णाओं से लड़ सकते हैं, जो हमें वापस इस रचना की ओर खींच रही हैं।*
>
> संत संवाद, भाग 2

* * *

सतगुरु की मौजूदगी

हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी हमें यह अमूल्य सुझाव देते हैं कि हम अपने दिन सतगुरु की हुज़ूरी में कैसे बिता सकते हैं। आप पुस्तक संत संवाद, भाग 3 में फ़रमाते हैं:

> *सतगुरु को अपने दिल में बसाए रखने के लिये और स्वयं को सतगुरु की हुज़ूरी में समझकर हम इस दुनिया में जो कुछ भी करते हैं, वह भजन-सिमरन है, भजन-सिमरन का ही हिस्सा है। आप चाहे रूहानी अभ्यास में बैठे हों या चुपचाप ही बैठे हों, सतगुरु के लिये प्रेम और श्रद्धा से सराबोर हों, शब्द-धुन को सुन रहे हों या प्रकाश को देख रहे हों, आप चाहे कुछ भी कर रहे हों, दुनियावी काम ही सही, अगर आपके सतगुरु की याद आपके मन में है, वह आपके दिल में हैं, अगर आप अपने सब काम सतगुरु के उपदेश और हुक्म के मुताबिक़ करते हैं, तो आप सतगुरु के साथ ही हैं।*

महाराज जी समझाते हैं कि हम ज़िंदगी में जो कुछ भी करते हैं वह भी भजन-सिमरन बन सकता है, बशर्ते कि उस समय सतगुरु हमारे दिल में हों क्योंकि जब हम उन्हें याद करते हैं तो हम उनकी हुज़ूरी में होते हैं। हमें बताया जाता है कि नामदान के समय सतगुरु अपने नूरी स्वरूप में हमारे अंदर विराजमान हो जाते हैं, जिसका अर्थ है कि वे सदा हमारे अंग-संग रहते हैं। लेकिन हमें यह एहसास हमेशा नहीं रहता कि वह हमारे साथ हैं क्योंकि हम ख़ुद उनके साथ नहीं रहते।

रोज़ाना भजन-सिमरन में बैठते समय हम सजग होकर प्रयास करते हैं कि हम सतगुरु की हुज़ूरी में रहें। लेकिन भजन-सिमरन कर लेने के बाद जब हम अपने रोज़मर्रा के कामों में जुट जाते हैं तब अकसर हम अगले दिन भजन-सिमरन में बैठने तक उन्हें भूल जाते हैं।

सतगुरु से मिलाप का एक फ़ायदा यह है कि हम उनके साथ एक ख़ास रिश्ता क़ायम कर सकते हैं ताकि वह हमारे सच्चे साथी और वफ़ादार दोस्त बन जाएँ। इस बात का एहसास होने से कि सतगुरु सदा हमारे अंग-संग हैं, हमारा मन सजग रहता है फलस्वरूप हम हर चुनाव और कर्म अधिक सावधान होकर करते हैं। धीरे-धीरे हमारे अंदर बदलाव आने लगता है; हम ज़्यादा शांत और अधिक जागरूक हो जाते हैं।

भजन-सिमरन में हम अपने मन को स्थिर करने और सतगुरु की मौजूदगी के प्रति सचेत होने की कोशिश करते हैं। यह हमारे मन के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। यह सारा दिन इधर-उधर हर दिशा में भागता रहता है और कुछ मिनटों के लिए भी टिकता नहीं है, ढाई घंटे स्थिर होकर बैठना तो बहुत दूर की बात है।

हमें रोज़ाना भजन-सिमरन के वायदे को पूरा करने की हर मुमकिन कोशिश करनी चाहिए, लेकिन यदि हम पूरा समय नहीं बैठ पाते तो हमें याद रखना चाहिए कि अगला दिन दोबारा कोशिश करने का नया अवसर है। हार मानने का सवाल ही नहीं उठता; हमें नए उत्साह के साथ अपनी कोशिशें जारी रखनी चाहिएँ।

अहम बात तो यह है कि हम अपने रोज़मर्रा के भजन-सिमरन को सतगुरु की ख़ुशी प्राप्त करने का ज़रिया मानें और उनसे मिली अनेक दातों के लिए आभार जताने और शुक्रगुज़ार होने के लिए भी भजन-सिमरन करें। यदि हम संतमत के अनुसार जीवन जीते हैं तो जैसा कि महाराज जी ने ऊपर फ़रमाया, सतगुरु को अपने दिल में बसाए रखने के लिये हम ज़िंदगी में जो कुछ भी करते हैं, वह भजन-सिमरन ही बन जाता है। दूसरे लफ़्ज़ों में, फिर हम सिर्फ़ ढाई घण्टे भजन-सिमरन न करके पूरा दिन भजन-सिमरन कर रहे होते हैं।

चाहे हम चल रहे हों, आलू छील रहे हों, रोटियाँ बेल रहे हों या बर्तन धो रहे हों, जब हम अपने सतगुरु को याद करते हैं तो हर काम भजन-सिमरन बन जाता है। इस तरह हमारी ज़िंदगी में बदलाव आने लगता है और यह परमात्मा के प्रति समर्पण बन जाती है – हमारा जीवन भक्ति का गीत बन जाता है। तब सतगुरु हमारे द्वारा की गई हर चीज़ को प्रेम की भेंट समझकर

स्वीकार कर लेते हैं। पूरा दिन मन में उनकी मौजूदगी के एहसास को बनाए रखना ज़िंदगी जीने का बहुत ख़ूबसूरत तरीक़ा है।

अगर हम हर समय सचेत रूप से सतगुरु की मौजूदगी में रहने का अभ्यास करना चाहते हैं तो हमें ऐसे तरीक़े खोजने पड़ेंगे जिनसे हमारे विचार और कर्म इस मक़सद को पूरा करने में सहायक हों। इसके लिए हमारे पास तीन शक्तिशाली साधन हैं–सिमरन, सत्संग और सेवा।

सिमरन करना इन तीनों में से सबसे आसान है। जब हम अपने रोज़मर्रा के अन्य कामों को करते हुए पाँच नाम का सिमरन करते हैं तब हमारे मन का रुख़ सतगुरु की ओर हो रहा होता है। फिर हर रोज़ ढाई घंटे के लिए भजन–सिमरन में बैठना नीरस न होकर आनंदायक बन जाता है। जहाँ तक संभव हो हमें मन को सिमरन में व्यस्त रखना चाहिए, इस तरह हम इसे व्यर्थ की बातें सोचने से रोक सकते हैं क्योंकि एक पुरानी कहावत है–'ख़ाली मन शैतान का घर होता है।'

अगर हम अपने दिन की शुरुआत भजन–सिमरन से करें और सोने से पहले भजन–सिमरन या रूहानी साहित्य को पढ़ें तो हम अपने लक्ष्य के और नज़दीक पहुँच रहे होते हैं। सिमरन करने या सतगुरु को याद करने के अन्य मौक़े और कुछ सरल–सी आदतें हैं जिन्हें हम अपना सकते हैं जैसे कि खाना खाते वक़्त, टहलते हुए, सीढ़ियाँ चढ़ते या व्यायाम करते हुए उन्हें याद करना। असल में, बहुत–से हालात हमें सतगुरु की ओर रुख़ करने का मौक़ा देते हैं।

सत्संग सुनने से अतिरिक्त लाभ मिलता है क्योंकि यह हमें उन वायदों की याद दिलाता है जो हमने अपने सतगुरु से किए हैं। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि सतगुरु देहस्वरूप में सत्संग में मौजूद हैं या नहीं। जब हम उनके नाम पर इकट्ठा होते हैं तब वह शब्द–स्वरूप में वहीं मौजूद होते हैं और हम प्रेम तथा श्रद्धा का अनुभव करते हैं। इस प्रकार हमें मार्ग पर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा मिलती है।

सेवा भी सतगुरु को हाज़िर–नाज़िर महसूस करने का उत्तम साधन है। सेवा का अर्थ बहुत व्यापक है। हर वह काम जो हम निष्काम होकर करते हैं,

सेवा ही है। जब हम मन लगाकर सेवा कर रहे होते हैं तब हमारा ख़याल ख़ुद-ब-ख़ुद सतगुरु की ओर चला जाता है। जब हमें इस बात का एहसास हो जाता है कि हम उनकी हुज़ूरी में हैं फिर हम सिर्फ़ वही करते हैं जो सही है। हुज़ूर बड़े महाराज जी पुस्तक *गुरुमत सिद्धान्त,* भाग 2 में फ़रमाते हैं:

> *गुरु की सेवा सबसे उत्तम और पवित्र है, क्योंकि गुरु सब बन्धनों से रहित है, वह मालिक के प्रेम का सागर है। उसकी सेवा द्वारा हम भी बन्धनों से छूट जाते हैं और हमारे अन्तर में मालिक का प्रेम जाग्रत होता है।*

जैसा कि हम देख सकते हैं कि हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में सतगुरु को याद करने के अनेक मौक़े हैं। जब भी मौक़ा मिले उन्हें याद करने में ही हमारा भला है। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि इसका संबंध हमारी मृत्यु के साथ है जब हम इस संसार से कूच करते हैं। भगवद्‌गीता में भगवान श्री कृष्ण अपने शिष्य अर्जुन से कहते हैं:

> *अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।*
> *य: प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय:॥*
> *यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।*
> *तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित:॥*
> *तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।*
> *मय्यर्पितमनोबुद्धिमर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥*

> *अर्थात् जो पुरुष अंतकाल में मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह मेरे स्वरूप को ही प्राप्त करता है; इसमें संशय नहीं है।*
>
> *हे अर्जुन! जो कोई अंतकाल में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस-उसको ही वह प्राप्त करता है।*
>
> *क्योंकि उस समय उसका भाव निरंतर उसी विचार में बह रहा था। इसलिए हर समय मेरा ही स्मरण करो और युद्ध करो। मुझमें अर्पित मन-बुद्धि से तुम निस्संदेह मुझे ही प्राप्त हो जाओगे।*

हर समय सतगुरु की याद बनाए रखने से दुनिया और इसके बंधनों से बेलाग होने में मदद मिलती है। जब हम सतगुरु को पहल देते हैं तब दुनियावी रिश्तों-नातों की अहमियत कम होने लगती है। जीवनसाथी, माता-पिता, बाल-बच्चे, दोस्त-मित्र और पालतू जानवरों के मोह के बँधन ढीले होने लगते हैं जिससे मृत्यु के बाद हम फिर से पुनर्जन्म के चक्र में नहीं आते हैं। हुज़ूर बड़े महाराज जी *प्रभात का प्रकाश* पुस्तक में फ़रमाते हैं:

> *मन जैसी संगति में रहता है, उस पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। दुनियादारों की संगति से मनुष्य की सांसारिक वृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं। आध्यात्मिक महापुरुषों की संगति मनुष्य में अध्यात्म का रुझान पैदा करती है।*

इसलिए हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम दिन-भर क्या सोचते हैं। जब हमारे विचार हमें संसार की ओर ले जाएँ तब यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम इनके भ्रम-जाल में न फँसें और अपने विचारों को सतगुरु की ओर मोड़ दें। जैसा कि महाराज जी ने समझाया है:

> *अगर आपके सतगुरु की याद आपके मन में है, वह आपके दिल में हैं, अगर आप अपने सब काम सतगुरु के उपदेश और हुक्म के मुताबिक़ करते हैं, तो आप सतगुरु के साथ ही हैं।*
>
> संत संवाद, भाग 3

> *अगर आप उस स्वरूप का ध्यान करने में क़ामयाब नहीं होतीं, तब यह सोचें कि आप सतगुरु की मौजूदगी में बैठकर सिमरन कर रही हैं। आपको यह महसूस होना चाहिये कि आप उनकी हाज़िरी में बैठकर सिमरन कर रही हैं। इससे आपके ख़्याल को वहाँ लाने और वहाँ एकाग्र करने में मदद मिलेगी।*
>
> संत संवाद , भाग 2

* * *

प्रसाद का तोहफ़ा

एक अंश

प्रसाद असल में उसके लिये होता है जिसे दिया जाता है। इससे हमें सतगुरु की, उनके उपदेश की याद आनी चाहिये। इससे प्रेम और भक्ति पैदा होनी चाहिये। यह शिष्य और सतगुरु के बीच की एक कड़ी है। जब हम प्रसाद खाते हैं तो हमेशा सतगुरु को, उनके उपदेश को याद करते हैं। इस नज़रिये से यह बहुत फ़ायदेमंद है। लेकिन अगर आप इसे केवल एक रस्म की तरह लेते हैं कि शायद इसे खाने से आप पर दवा जैसा असर हो जायेगा या कोई रूहानी प्रभाव होगा, तो आप अपने आप को धोखा दे रहे हैं। यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि आप प्रसाद को किस नज़रिये से लेते हैं। बात तो आपके नज़रिये की है।

हम अकसर अपने यार-दोस्तों से तोहफ़े लेते और देते हैं। तोहफ़े की क़ीमत पैसों से नहीं आँकी जा सकती। तोहफ़े की क़ीमत आप उस प्यार से आँकते हैं जिसके कारण आपको तोहफ़ा दिया गया है, क्योंकि तोहफ़ा आपको देनेवाले की, उसके गुणों की, उसकी दोस्ती की, उसके प्यार की और आपके प्रति उसकी सद्‌भावना की याद दिलाता है। इसलिये अहमियत तो आपके प्रति उसके प्यार की, उसके सद्‌गुणों की, आपके लिये उसकी सद्‌भावना की है, तोहफ़े की नहीं।...

इसी तरह जब हम प्रसाद को परमपिता परमात्मा की, सतगुरु की बख़्शिश के रूप में लेते हैं, तो इससे मन में सतगुरु की, उनके उपदेश की याद आनी चाहिये, परमात्मा के लिये भक्ति-भाव और प्यार पैदा होना चाहिये और संतमत के उसूलों पर चलने की ताक़त मिलनी चाहिये, अपने जीवन को उन उसूलों के मुताबिक़ ढालने तथा भजन-सिमरन करने की शक्ति मिलनी चाहिये। तभी प्रसाद का फ़ायदा होता है।

अगर आप प्रसाद को केवल मिश्री या मिठाई समझकर खायें तो यह बस मिठाई ही है। इसलिये प्रसाद को विश्वास के साथ खाना चाहिये और इसी विश्वास से आपको संतमत के उसूलों के मुताबिक़ ज़िंदगी बिताने की ताक़त

मिलती है। अगर आप प्रसाद अपने रिश्तेदारों को देंगे तो उनके लिये इसकी कोई अहमियत नहीं होगी, क्योंकि उनके अंदर वह विश्वास नहीं होगा। इसलिये उनके लिये यह केवल मिठाई ही होगी। असल में प्रसाद सिर्फ़ उसके लिये ही होता है जिसे दिया जाता है; यह दूसरों में बाँटने के लिये नहीं दिया जाता। यह तो एक निजी दौलत है जिसकी निजी दौलत की तरह ही क़द्र करनी चाहिये।...

असल में प्रसाद उसी के लिये होता है जिसे दिया जाता है। यह उस व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह इसका इस्तेमाल कैसे करना चाहता है। आम तौर पर यह आपको उसकी याद दिलाता है जिसने यह दिया है। यह तो लेनेवाले और देनेवाले के बीच की बात है। इसकी अहमियत उनके रिश्ते में होती है, प्रसाद हमें उस रिश्ते की याद दिलाता है। आप अपने प्रियतम को एक फूल देते हैं। उस फूल में ऐसा क्या ख़ास है जो गुलाब के बग़ीचे के दूसरे फूलों में नहीं है? सारा बग़ीचा फूलों से भरा हुआ है, लेकिन वह फूल आपके लिये क़ीमती क्यों हो जाता है? क्योंकि वह देनेवाले और जिसे दिया गया है उनके बीच की बात है। वह रिश्ता ख़ूबसूरत है। असली अहमियत उस रिश्ते की है, न कि फूलों की। फूल तो आपको किसी भी बग़ीचे से मिल सकते हैं।

* * *

हज़ारों मील का सफ़र

कहावत "हज़ारों मील का सफ़र पहले क़दम से शुरू होता है।" ताओ ते चिंग से उद्धरित है और इसका श्रेय चीनी संत लाओज़ी को जाता है। यदि हम इस बारे में सोचें तो हमारे द्वारा शुरू किए हर काम की शुरुआत हमारे उस पहले एक क़दम से ही हुई थी।

कुछ लोगों के लिए कोई नया काम शुरू करना आसान होता है लेकिन ज़्यादातर लोगों को दृढ़ संकल्प और मेहनत करने पर सफलता मिलती है। रूहानी मार्ग पर भी कुछ ऐसा ही होता है। तो यह रूहानी सफ़र क्या है जिसे हमने आरंभ किया है या जिसके बारे में हम सोच रहे हैं? और वे कौन-से क़दम हैं जो हम उठाते हैं? पुस्तक *बी ह्यूमन–दैन डिवाइन* में हम पढ़ते हैं:

> *प्लेटो का कथन है: एक समय था जब आत्मा के पास पंख थे और वह रूहानी लोक में बेफ़िक्र और आज़ाद उड़ती थी। दिव्य प्रेम की ऊपर उठने वाली तरंगों के ज़रिए वह सत्य का अनुभव करती थी और अपने असल पोषण–परमात्मा के नूरानी स्वरूप, परम सौंदर्य–का आनंद लेती थी।*

यह हमारी आत्मा के निज-घर का कितना सुंदर वर्णन है। इस रूहानी सफ़र की तुलना किसी भी दुनियावी सफ़र से नहीं की जा सकती।

सिर्फ़ परमात्मा ही जानता है कि किस वजह से कुछ आत्माओं को उनके निज-घर से दूर इस रचना में भेज दिया गया ताकि रचना के विभिन्न मुक़ामों को बसाया जा सके। इनमें से बहुत-सी आत्माएँ अब स्थूल शरीरों में क़ैद हैं, उन्हें सब कुछ भूल चुका है और वे माया के भ्रम में खो गई हैं। वे कर्मों के क़ानून तथा पुनर्जन्म के चक्र में फँस गई हैं जहाँ हर कर्म की प्रतिक्रिया होती है और हर कर्म का हिसाब चुकता करना पड़ता है।

मृत्यु के बाद आत्मा को अगले शरीर में भेजा जाता है जहाँ वह अपने प्रारब्ध कर्मों का लेखा-जोखा पूरी तरह से चुकता कर सके। जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का यह दुखदायी चक्र निरंतर चलता रहता है। फिर भी यह

निराशाजनक दृश्य ही कहानी का अंत नहीं है। सदियों से ही दार्शनिकों, ब्रह्मज्ञानियों और संत-महात्माओं ने समझाया है कि आत्मा फिर से निज-घर लौट सकती है और अपने परमपिता परमात्मा से पुन: मिलाप कर सकती है।

हम इस सफ़र पर कैसे निकलें? यह बहुत दिलचस्प है कि पहला क़दम हम ख़ुद नहीं उठाते। पहला क़दम देहधारी सतगुरु से मिलाप और उनसे नामदान मिल जाना है। शायद हमें यह लगे कि सतगुरु की खोज हम करते हैं लेकिन सच तो यह है कि वह जानते हैं कि कौन-सी आत्माएँ तैयार हैं और फिर वह उन्हें अपनी ओर खींचते हैं। पूर्ण संत-महात्माओं का मक़सद यह सुनिश्चित करना होता है कि उनके शिष्यों की आत्माएँ सतगुरु की दया-मेहर और प्रेम के सहारे निज-घर की ओर उड़ान भरें।

सतगुरु को तो मंज़िल का ज्ञान पहले से ही है। हमारे सीमित नज़रिए के कारण हमें लगता है कि सफ़र अभी शुरू हुआ है।

सभी प्राचीन यूनानी दार्शनिकों पाइथागोरस, सुकरात, प्लेटो और अरस्तू का मानना था कि सच्चे गुरु के मार्गदर्शन में हमारी 'आत्मा फिर से पंख प्राप्त कर सकती है।' उनका मानना था कि इस सफ़र में हमारे क़दम उस दिशा में बढ़ेंगे जिस तरफ़ हमारा ध्यान होगा। हमें अपने ध्यान, इच्छाओं और प्रेम का रुख़ संसार की तरफ़ से हटाकर सतगुरु की ओर करना पड़ेगा।

सफ़र के इस पड़ाव पर हमारा ध्यान ही हमारी दिशा तय करेगा। यूनानी दार्शनिकों ने रोज़मर्रा के अभ्यास पर आधारित मार्ग को अपनाने का समर्थन किया। वे अपने शिष्यों को उच्च नैतिक आचरण अपनाने की सीख देते थे। उनके लिए चिंतन, ध्यान, मौन और मन को प्रशिक्षित करना ज़रूरी होता था।

ये नियम कुछ हद तक हमारे रूहानी सफ़र में भी लागू होते हैं, इनके अलावा इस सफ़र के तीन मुख्य नुक़्ते हैं–सतगुरु, प्रेम और हमारा ध्यान। जब तक हम अपने पहले मुख्य पड़ाव तीसरे तिल पर नहीं पहुँच जाते तब तक हमें इस बात का कोई अंदाज़ा ही नहीं होता कि हमारे सतगुरु असल में किस हस्ती के मालिक हैं। हमें इस बात का भी कोई अंदाज़ा नहीं है कि

वह इस यात्रा में हमारे लिए असल में क्या कुछ कर रहे हैं। जिस चीज़ के बारे में हम जान सकते हैं–जिसके लिए हम लगातार कोशिश कर सकते हैं–वह है हमारा ध्यान।

हमें निम्नलिखित चीज़ों पर अमल करना चाहिए: हमें हर काम में सतगुरु का अनुसरण करना चाहिए, हमें अच्छे इनसान बनना चाहिए; हमें शाकाहारी भोजन अपनाना चाहिए; हमें शराब, मादक पदार्थों और तंबाकू इत्यादि उत्पादों का सेवन नहीं करना चाहिए; जहाँ तक हो सके हमें हर पल पूरी तवज्जोह के साथ अपना सिमरन करना चाहिए और हमें हर रोज़ सचेत होकर अपने रूहानी अभ्यास को भी समय देना चाहिए। पुस्तक *बी ह्यूमन–दैन डिवाइन* में हम पढ़ते हैं:

> *व्यावहारिक फ़लसफ़ा स्पष्ट सोच अपनाने, दृढ़ रहने और समझदारी से चुनाव करने के लिए मार्गदर्शन करता है–ऐसे चुनाव जो परेशानियों तथा उलझनों को और न बढ़ाएँ, बल्कि सुख और आत्मिक कल्याण की ओर ले जाएँ।*

पाइथागोरस के स्वर्णिम वचन (The Golden Verses of Pythagoras) इस पुस्तक का मूल विषय हैं और ये इस बात पर ज़ोर देते हैं कि नैतिक जीवन जीने से आख़िरकार हम परम सत्ता के प्रति जागरूक हो जाते हैं। प्राचीन दार्शनिक गुरु की भूमिका यानी उपदेश देना और हर शिष्य को ज़रूरी मार्गदर्शन देना, के बारे में भी बहुत स्पष्ट थे।

हमारे संत–सतगुरुओं का भी यही मक़सद है। वे चाहते हैं कि हम इस मार्ग पर पूरी लगन से अभ्यास करें ताकि हम अपने सामर्थ्य को पहचान सकें। हमें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि यह एक धीमी प्रक्रिया है। इसके लिए कोई शॉर्टकट नहीं है।

इस सफ़र के बारे में हमारा नज़रिया व्यावहारिक होना चाहिए। शायद जीवन के अंत तक हमें इस रणभूमि में लड़ना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि हमारा सबसे बड़ा शत्रु–मन–इस जीवन के अंत तक हमारे साथ ही

रहेगा। यह मन अपनी चतुराई, नकारात्मकता और बार-बार उकसानेवाली प्रवृत्तियों द्वारा हमें संसार के दलदल में फँसाकर रख सकता है। लेकिन सतगुरु की दया-मेहर और निरंतर प्रयास से हम इन बंधनों से मुक्त भी हो सकते हैं।

हम इस लड़ाई में सही चुनाव तभी कर पाएँगे जब हम अपने शत्रु के स्वभाव को समझ जाएँगे। लापरवाही, आलस्य और नकारात्मकता मन को ताक़त देते हैं और हमें इस संसार से ही बाँधकर रखते हैं। हमें हर रोज़ विवेक, ध्यान और सिमरन की शक्ति से लैस होकर इस युद्ध में उतरना पड़ता है। हम *स्वर अनेक, गीत एक* पुस्तक में पढ़ते हैं:

> *नाम के इस जाप में सतगुरु की शक्ति निहित है जो शिष्य के मन को एकाग्र और स्थिर करती है। जब आत्मा मन के दायरे से ऊपर उठ जाती है तो शिष्य उस अलौकिक और सच्चे धुनात्मक नाम से जुड़ जाता है। इसी नाम से जुड़ना संतों द्वारा बताई गई भक्ति का लक्ष्य है।*

हमारा ध्यान ही वह ज़रिया है जिससे हम अपनी पहली मंज़िल – तीसरे तिल – पर पहुँच सकते हैं। हमारे सतगुरु द्वारा दिया गया सिमरन ईंधन का काम करता है। अगर हम सिमरन करते हैं तो हमारे अंदर सिमरन की शक्ति आ जाती है। सिमरन के पाँच नामों का भेद सतगुरु देते हैं – इनमें सतगुरु की शक्ति समाई होती है।

मन ख़ुद को विचारों के ज़रिए प्रकट करता है। कभी-कभी ये विचार अच्छे, फ़ायदेमंद और सकारात्मक होते हैं। लेकिन ज़्यादातर ये विचार नकारात्मक, भोग-विलास में लिप्त करनेवाले और हमें लक्ष्य से दूर ले जानेवाले होते हैं। सतगुरु की दया-मेहर पर तो कोई संदेह नहीं किया जा सकता मगर इस लड़ाई में हम दृढ़तापूर्वक अपना ध्यान नहीं लगाते।

तीसरे तिल तक हमारे सफ़र की रफ़्तार स्वाभाविक तौर पर धीमी होती है। जब से हम इस रचना में आए हैं तब से मन मनमानी ही करता आया है। इसे बॉस बनना पसंद है। फिर भी हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि हमें

पाँच नाम का सिमरन किसने और क्यों दिया है। इन नामों को दोहराने से मन को क़ाबू में किया जा सकता है और हम उस शब्द-धुन को सुनने के क़ाबिल बन सकते हैं जो आत्मा को निज-घर वापस ले जाएगी।

हमारे लिए यह बहुत अहम है कि हम दिन-भर जितना हो सके उतना सिमरन करें। सिमरन करने से हमारा ध्यान अपने सतगुरु की ओर जाता है और इससे प्रेम तथा भक्ति-भाव बढ़ता है। यह हमें भजन-सिमरन के लिए तैयार करता है जोकि हमारे जीवन का सबसे अहम कार्य है। धीरे-धीरे सिमरन हमारी बुरी आदतों और संस्कारों को ख़त्म कर देता है। यह अपने आप आनेवाले नकारात्मक विचारों का अंत करता है। सजगता के साथ किया गया ध्यान, हमारे ध्यान को आत्मा की ओर ले जा सकता है। यह चुनाव हमें करना है।

सिमरन का हर चक्र मन की शक्ति पर एक प्रहार है। हम नहीं जानते कि हम इस सफ़र में कहाँ तक पहुँच गए हैं और हमें यह जानने की ज़रूरत भी नहीं है। हमें केवल छोटे-छोटे क़दम बढ़ाते रहने की ज़रूरत है जब तक कि एक दिन वे प्रेम के ऐसे ज़बरदस्त प्रवाह में न बदल जाएँ जो हमें सीधा हमारे सतगुरु की गोद में ले जाए।

हज़ारों मील का सफ़र सिमरन के पहले क़दम से शुरू होता है। आइए, हम ये क़दम उठाते रहें।

> *घण्टे की मधुर आवाज़ चुम्बक की तरह आत्मा को खींचती है और आत्मा का रूहानी सफ़र शुरू हो जाता है। गुरु ज़रूरी मदद और रहनुमाई करता है और धीरे-धीरे परमात्मा के पास सचखण्ड में पहुँचा देता है।*
>
> परमार्थी पत्र, भाग 2

उपेक्षित आत्मा

“द *मिस्टिक फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ संत मत*” में से लिया गया निम्नलिखित दृष्टांत इस पुस्तक में दर्ज कहानी का संक्षिप्त रूप है जिसमें लेखक दो भाइयों के बारे में बताता है: बड़ा भाई, एक अमीर और बहुत प्रतिष्ठित व्यापारी है जो एक बहु-मंज़िला हवेली में रहता है जबकि छोटा भाई दयनीय, निर्बल, दुबला-पतला इनसान है जिसकी बड़ी-बड़ी आँखें डर, दर्द और दु:ख से भरी रहती हैं। वह हमेशा दर्द भरा एक गीत गुनगुनाता रहता है।

कई साल पहले, अपने प्रतिष्ठित दोस्तों के सामने अपने छोटे भाई की वजह से शर्मिंदा होकर अमीर व्यापारी ने अपने नौकरों को बुलाकर अपने छोटे भाई को हवेली से निकालने का आदेश दे दिया था। लेकिन नौकरों ने ऐसा न करके उसे हवेली में ही छुपा दिया।

आख़िरकार, छोटे भाई द्वारा गाए जानेवाले दिल को छू लेने वाले गीत ने बड़े भाई की जिज्ञासा को जगा दिया। जाँच करने पर उसे पता चलता है कि दिल को छू लेने वाले इस गीत को कोई और नहीं बल्कि उसका छोटा भाई ही गा रहा है जिसे परछत्ती पर एक क़ैदी की तरह रखा गया था।

अपने भाई के साथ किए गए बर्ताव का एहसास होने पर वह दुखी होकर हवेली छोड़कर चला जाता है। बेचैन होने के कारण वह रोते हुए पास ही के जंगल में रुक जाता है तभी वहाँ से गुज़रने वाला एक भिक्षुक उससे उसकी परेशानी की वजह पूछता है। वह उसे सारा किस्सा सुनाता है जिसे सुनकर वह उसे नसीहत देता है कि वह अपने भाई को हर रोज़ मिले और धीरे-धीरे प्रेम से उसे अपना दोस्त बना ले। फिर वह उसे अपने फटे-पुराने कपड़े पहनने को देता है ताकि जब वह अपने ग़रीब भाई से मिले तो उसकी धन-दौलत की वजह से उसके अंदर हीन भावना न आए।

इस तरह दोनों भाई फिर से मिल जाते हैं और हवेली को छोड़कर ‘सचखंड’ नामक सुंदर देश के लिए निकल जाते हैं।

यह कहानी हमारे मन और आत्मा के संबंध का प्रतीकात्मक चित्रण है। अमीर और प्रतिष्ठित व्यापारी भाई मन का प्रतीक है जबकि छोटा भाई आत्मा का। आत्मा शरीर रूपी हवेली में कारावास का दु:ख भोगती है जहाँ ताक़तवर मन जो ख़ुद इंद्रियों और उनकी अधूरी इच्छाओं के अधीन है आत्मा को बंदी बनाकर रखता है। यह कहानी दर्शाती है कि मन ने किस प्रकार आत्मा को अपने क़ाबू में किया हुआ है।

मन और आत्मा का यह संबंध इस रचना के हर जीव का अभिन्न हिस्सा है। दोनों एक ही शरीर में रहते हुए एक ही घर में रहनेवाले दो भाइयों की तरह हैं। दोनों को एक-दूसरे की मौजूदगी का अहसास है लेकिन दोनों का रुझान अलग-अलग दिशाओं में है–एक का बाहर की तरफ़, दूसरे का अंदर की ओर।

यह दो भेड़ियों की कहानी जैसा है–एक को तो हम ख़ूब पोषित करते हैं जबकि दूसरे की ओर ज़्यादा ध्यान नहीं देते। अफ़सोस कि हम मन का पोषण करते हैं, आत्मा का नहीं। हमारे रिश्ते-नाते, दुनियावी इच्छाएँ और रंग-तमाशे हमारे ध्यान को संसार की तरफ़ खींचते हैं क्योंकि हम इनमें से सुख पाना चाहते हैं। इस तरह हम अपनी आत्मा की पुकार को अनसुना कर देते हैं।

सभी धर्म और परमार्थी मान्यताएँ अमर-अविनाशी आत्मा को ही हर जीवित प्राणी का आधार मानती हैं। यह एक जीवनदायिनी शक्ति है जो निराकार है। आत्मा के बिना शरीर बिना सॉफ़्टवेयर का कंप्यूटर या बिना बिजली का बल्ब है। आत्मा के शरीर में प्रवेश करने पर शरीर जीवंत होता है; आत्मा ही शरीर में प्राणों का संचार करती है।

हालाँकि आत्मा परमात्मा का अंश है लेकिन हम अकसर इसे अनदेखा कर देते हैं–हम इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते। फिर भी यह परमात्मा का अंश है इसकी वजह से ही हर जीवित प्राणी का अस्तित्व और महत्त्व है।

जैसा कि स्कॉटिश लेखक जॉर्ज मैकडॉनल्ड ने कहा: "तुम्हारे पास आत्मा नहीं है, तुम आत्मा ही हो – तुम्हारे पास शरीर है।"

आत्मा परमात्मा का ही रूप है। इस कारण इसमें परमात्मा जैसे सभी गुण मौजूद हैं: यह परमात्मा की तरह अमर है और बिना किसी शर्त के प्यार करती है। यह हमारा वह अंदरूनी हिस्सा है जिसे हमारी सूक्ष्म रूहानी ताक़तों का बोध है। आत्मा अमर-अविनाशी है – सिर्फ़ हमारा शरीर ही मृत्यु का अनुभव करता है।

लेकिन परमात्मा ने हमारे साथ लुका-छिपी का अद्‌भुत खेल खेला है। उसने आत्मा को इस सारी रचना में भिन्न-भिन्न आवरणों के नीचे छुपा दिया है।

जिन्हें वह परमात्मा अपने में अभेद करना चाहता है वह उनके अंदर अपने मिलाप की तड़प और खोज की इच्छा पैदा कर देता है जिसमें हमारी आत्मा की पहचान भी शामिल है। लेकिन यह कार्य इतना आसान नहीं है। यह उतना ही कठिन है जैसे किसी बहुत बड़े जिगसा पज़ल (jigsaw puzzle) के टुकड़ों को जोड़कर छिपी हुई तस्वीर को सामने लाने का प्रयास करना।

आत्मा की पहेली को सुलझाना इसलिए मुश्किल है क्योंकि अभी तक हम अपनी आत्मा से नहीं जुड़ पाए। क्यों? पहली वजह यह कि आत्मा इतनी सूक्ष्म और गुप्त रूप से छिपी हुई है कि हमें उसके होने का बोध नहीं है। दूसरी वजह यह कि हम दुनिया के शोरगुल में इतना खो गए हैं और हमारा दृष्टिकोण इतना सीमित है कि हम आत्मा के रूहानी स्वरूप को जान ही नहीं पाते। फलस्वरूप आत्मा को पहचानने का काम पज़ल के टुकड़ों को जोड़ने की तरह असंभव-सा लगता है।

दो भाइयों की कहानी में हमारी आत्मा को दयनीय और बेबस दिखाया गया है। लेकिन असल में, यह कोई निष्क्रिय हस्ती नहीं है जिसका निवास हमारे शरीर की परछत्ती – माथे में है। यह एक सकारात्मक और उद्‌देश्यपूर्ण

शक्ति है जो हमारी हस्ती का आधार है। यह निर्मल चेतना है, परमात्मा रूपी सागर की एक बूँद है। यह वह शक्ति है जिसकी ओर ध्यान देने की ज़रूरत है और अपने ख़याल को अंदर अपनी आत्मा और सतगुरु के नूरी स्वरूप की ओर मोड़ने की ज़रूरत है।

जब दुनिया ही हमारे ख़यालों में रहती है और हम रोज़ का अपना सिमरन-भजन नहीं करते हैं तब हम अपनी आत्मा को नज़रअंदाज़ कर रहे होते हैं। जब हमारा ध्यान दुनिया की ओर होता है और हम दुनियावी शक़्लों-पदार्थों में पूरी तरह से खो जाते हैं तब हम दुनियादार बन जाते हैं। जब हमारा ध्यान आत्मा की ओर मुड़ता है तब हमारी वृत्ति परमार्थी हो जाती है।

सिमरन वह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिससे हम दुनियावी सिमरन को परमात्मा के सिमरन में बदल सकते हैं और यह हमारे मन पर एक गहरी छाप छोड़ देता है। वह छाप दुनियावी हो या परमार्थी, यह चुनाव हमें करना है। लेकिन असल में हम अपने मन पर लगातार किस छाप को गहरा कर रहे हैं? हम किस भेड़िये का पोषण कर रहे हैं–मन का या आत्मा का? दुनियावी विचारों और सिमरन के बीच चुनाव करना मुश्किल नहीं है फिर भी यह एक ऐसा चुनाव है जिसे हम नियमित रूप से नहीं करते।

यह सब इस बात की ओर इशारा करता है कि हमारा सिमरन सतगुरु की शक्ति से भरपूर असाधारण रूहानी वरदान है। असल में परमात्मा के नाम को इसलिए दोहराना है ताकि परमात्मा के साथ हमारा रिश्ता गहरा हो सके। इससे हम आत्मा के प्रति सचेत होने लगते हैं और सतगुरु की दया-मेहर को ग्रहण करने लायक़ बन जाते हैं। यह परमात्मा के लुका-छिपी के खेल को समझने का ज़रिया है।

हम इस रूहानी मार्ग को इसलिए अपनाते हैं ताकि हम परमात्मा की पहचान कर पाएँ, लेकिन सबसे पहले हमें अपनी आत्मा के रहस्य को समझना पड़ेगा। इसलिए हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम इस मनुष्य

शरीर को ज़रिया बनाकर अपनी आत्मा को शरीर की परछत्ती से मुक्त करवा लें। इसके लिए हमें अपने मन के साथ एक अलग तरह का रिश्ता बनाना होगा।

मन के अधीन होने के कारण हमारा ध्यान लगातार स्थूल पदार्थों, ख़ासकर पाँच इंद्रियों और हौमैं में ही फँसा रहता है जिस वजह से हम अपने भीतर के दिव्य जगत का अनुभव नहीं कर पाते। रूहानी तरक़्क़ी करने के लिए यह ज़रूरी है कि हम अपने मन के बजाए आत्मा के प्रति वफ़ादार हों।

कहानी में भिक्षुक ज्ञानी महात्मा का प्रतीक है। उसका फटे-पुराने कपड़े पहनने से भाव विनम्रता को धारण करना है-जिसे समझ पाना अहंकारी मन के लिए मुश्किल है। वह महात्मा इस बात को जानते थे कि जब तक व्यापारी अपने अभिमान और अहंकार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो जाता तब तक दोनों का मिलाप नहीं हो सकता। भाव यह है कि जब तक हम अपनी हौमैं और हौमैंपूर्ण व्यवहार का त्याग नहीं करते हम अपनी आत्मा के परछत्ती भाव तीसरे तिल में पहुँचने की उम्मीद नहीं कर सकते।

हमारी भजन-बंदगी हमारी रोज़ की हाज़िरी है जिससे धीरे-धीरे परमात्मा के लिए हमारा प्यार बढ़ता है और एक दिन यह प्यार शरीर रूपी घर से हमारी सुरत को समेटकर उस परछत्ती पर पहुँचा देगा-जहाँ आत्मा का दिव्य साम्राज्य है। जब ऐसा होगा तब हमें फिर से अपनी आत्मा की पहचान हो जाएगी और उसकी जन्म-जन्म की उदासी ख़त्म हो जाएगी।

हमारे सबसे चुनौतीपूर्ण कार्यों में से एक है ग़फ़लत को चिंतन में बदलना यानी कि बिस्तर से उठकर भजन-सिमरन करना। हर सुबह हमारी तरफ़ से उठाए गए ये कुछ क़दम हमारी रूहानी उन्नति के लिए बहुत अहम हैं। इस ज़िम्मेदारी को नियमित रूप से निभाए बिना हम रूहानी तरक़्क़ी की आशा कैसे रख सकते हैं?

सिर्फ़ भजन-सिमरन से ही मन और आत्मा के बीच तालमेल बिठाया जा सकता है। हमारे रूहानी विकास के लिए ज़रूरी यह है कि हम हर उस

चीज़ को छोड़ दें जो हमारी आत्मा के प्रकाश को धुंधला कर रही है ताकि इसे मन व शरीर के बंधन से मुक्त कर सकें।

हमारा मक़सद इस पहेली को सुलझाना है यानी कि अपनी आत्मा को मुक्त करवाकर वापस अपने घर सचखंड जाना है। नामदान के लिए अर्ज़ करने से लेकर नामदान मिल जाने तक हमने अपनी चाहत को ज़ाहिर किया है और अब हमें इसे अंजाम तक पहुँचाना है।

> *बाबा जी महाराज ने हुज़ूर महाराज जी को यही लिखा था। जैसे ही एक सत्संगी को नामदान प्राप्त हो जाता है, आप यह मान सकते हैं कि वह सचखण्ड पहुँच गया, यानी वह देर-सवेर सचखण्ड ज़रूर पहुँचेगा।...एक बात तो पक्की है कि एक दिन बीज अवश्य अंकुरित होगा, आत्मा अपनी मंज़िल तक ज़रूर पहुँचेगी। लेकिन आपको एक लंबा रास्ता तय करना है।*
>
> संत संवाद, भाग 2

* * *

प्रेम का साकार रूप

जब हम रूहानी मार्ग पर चलना शुरू करते हैं तब हमें एहसास होता है कि इस मनुष्य-जन्म का मक़सद परमात्मा के साथ रिश्ता क़ायम करना है। आख़िरकार, इस रिश्ते का उद्‌देश्य अपनी आत्मा को परमात्मा में अभेद कर देना है। जब हम किसी रूहानी मार्ग को चुन लेते हैं फिर उस मार्ग पर चलना हमारी ज़िम्मेदारी बन जाता है। हम बहुत ज़्यादा ख़ुशक़िस्मत हैं कि संतमत में हमारा मिलाप ऐसे देहधारी सतगुरु से हुआ है जो धर्म-ग्रंथों और संत-महात्माओं के उपदेश के सही मायनों को समझने और सबसे महत्त्वपूर्ण, इन शिक्षाओं को अमल में लाने में हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

इस मार्ग पर चलने से पहले अपनी बुद्धि की तसल्ली करना सबसे ज़रूरी होता है ताकि हमारे अंदर इतना यक़ीन और भरोसा पैदा हो जाए जिससे हम उस मार्ग पर दृढ़ता से चल पाएँ और अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पर्याप्त तरक़्क़ी कर सकें। अब महत्त्वपूर्ण सवाल ये हैं कि क्या हम बुद्धि की तसल्ली करने के बाद आगे बढ़कर उस उपदेश पर अमल करते हैं और क्या हम उस उपदेश को करनी में लाकर जीवन बिताते हैं ताकि हम वह रूहानी तरक़्क़ी कर सकें जो हम करना चाहते हैं?

दूसरी तरफ़, क्या हम हमेशा अपने मन के ग़ुलाम होने के कारण दिमाग़ में आनेवाले बेशुमार सवालों के जवाब ढूँढ़कर बुद्धि की तसल्ली करने में ही लगे रहते हैं? अगर थोड़ा-सा सोच-विचार करें तो इसमें कोई संदेह नहीं कि हर सवाल का जवाब ढूँढ़ लेने पर सिर्फ़ और अधिक सवाल ही पैदा होते हैं। अगर थोड़ा और गहराई से सोचें तो साफ़ ज़ाहिर होता है कि जब तक हम उन जवाबों पर अमल नहीं करते तब तक कभी ख़त्म न होनेवाले हमारे सवाल-जवाब व्यर्थ हैं।

अल्फ्रेड टेनीसन की कविता 'द चार्ज ऑफ़ द लाइट ब्रिगेड' के प्रसिद्ध उद्धरण में इस विचार को बड़ी ख़ूबसूरती से पेश किया गया है:

> *उनका काम 'कारण' पूछना नहीं,*
> *उनका काम तो सिर्फ़ करना और मरना है।*

अगर सैनिक कमांडर के फ़ैसलों पर सवाल उठाने लग जाएँ तो किसी भी सेना का युद्ध जीत पाना मुमकिन नहीं। इसी तरह, बेशुमार सवालों में उलझकर रूहानियत का जिज्ञासु अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। अगर हम रूहानी तरक़्क़ी करना चाहते हैं तो हमारे पास सिर्फ़ एक ही ज़रिया है–हमें किंतु-परंतु छोड़कर सिर्फ़ अमल करना है! हमें अपने सतगुरु के उपदेश का पालन करने की हर मुमकिन कोशिश करनी चाहिए और परिणाम अपने रूहानी कमांडर–अपने सतगुरु पर छोड़ देना चाहिए।

बुद्धि को बीच में लाने से मानसिक तर्क-वितर्क के जाल में आसानी से फँस जाना स्वाभाविक-सी बात है। रूहानी विषयों पर वाद-विवाद और चर्चा करना बुद्धि के ज़रिए उन विषयों को समझने की कोशिश करना है जो असल में इनसान की समझ से परे हैं। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि अहंकार के कारण हर इनसान यही सोचता है कि उसे दूसरों से ज़्यादा पता है। मन के अधीन होने के कारण हम निरंतर विश्लेषण करके, दलीलें देकर और तर्क-वितर्क द्वारा हर चीज़ को समझने की कोशिश करते हैं परन्तु किसी भी अर्थपूर्ण नतीजे पर नहीं पहुँचते।

यहाँ तक कि नामदान मिल जाने के दशकों बाद भी, हम मन के कहने पर इस व्यर्थ की कोशिश में लगे रहते हैं। यह मन की चालाकी है जो हमें सतगुरु के उपदेश पर अमल करने और उसके अनुसार जीवन नहीं जीने देता। ख़ुशक़िस्मती से इस समस्या का एक अचूक उपाय है और वह उपाय है मन को अपने वश में करना। लेकिन हम अपने इस कपटी मन को कैसे क़ाबू करें? हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी *संत संवाद*, भाग 1 में समझाते हैं:

> *मन इंद्रियों का ग़ुलाम है और आत्मा मन की ग़ुलाम हो गयी है, क्योंकि आत्मा भी मन के साथ ही इंद्रियों की ओर खिंची जा रही है। अब हमें*

> *इस सिलसिले को पलटना है। जब तक मन का झुकाव इंद्रियों की ओर रहेगा, यह उनकी तरफ़ ही जायेगा, लेकिन अगर यह उनकी तरफ़ जाने से इनकार कर दे तो यह उनका साथ छोड़ देगा। जब मन इंद्रियों का साथ छोड़ देता है, तब यह हमारा दोस्त बन जाता है।*

इसके लिए इस सारे सिलसिले को पलटना पड़ेगा, हमें मन को इंद्रियों के चंगुल से और आत्मा को मन के चंगुल से छुड़वाना पड़ेगा। भले ही यह सुनने में आसान लगता हो लेकिन इसके लिए जीवन-भर भजन-सिमरन करना पड़ता है। भजन-सिमरन की इस प्रक्रिया में अपने ख़याल को शरीर और संसार दोनों में से निकालकर तीसरे तिल पर एकाग्र करना पड़ता है।

इस महत्त्वपूर्ण कार्य में सफल होने पर मन को ऐसा आंतरिक आनंद प्राप्त होता है जिसकी तुलना में ऐंद्रिय भोगों द्वारा मिलने वाले सब दुनियावी रस फीके लगने लगते हैं। फिर मन दुनियावी सुखों की ओर आकर्षित नहीं होता और यही रूहानी तरक़्क़ी का राज़ है।

इस शरीर के दस द्वार हैं। इनमें से नौ द्वारों के ज़रिए हमारा ख़याल बाहर की ओर फैलता है जबकि केवल एक द्वार – दसवाँ दरवाज़ा – हमारे ध्यान को अंदर, ऊपर की ओर ले जाता है। इन नौ द्वारों – जिनमें दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, मुँह और नीचे के दो ऐंद्रिय सुराख़ शामिल हैं – को बंद करने से ही रूहानी तरक़्क़ी मुमकिन है।

हम सब का निजी अनुभव है कि इन्हीं नौ द्वारों के ज़रिए न सिर्फ़ हमारा संबंध इस स्थूल जगत से जुड़ता है बल्कि असल में इन्हीं द्वारों के ज़रिए हमारा ख़याल इस दुनिया और इसके क्षणभंगुर भोगों में फैलता है। हुज़ूर महाराज जी अपनी पुस्तक *संत संवाद*, भाग 2 में इस बात की पुष्टि करते हैं:

> *हमारी आँखों के केंद्र पर, मन और आत्मा की गाँठ बँधी हुई है। हमारा ख़याल यहाँ से यानी तीसरे तिल से उतरकर, शरीर के नौ द्वारों से बाहर निकलकर सारी दुनिया में फैला हुआ है।*

यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि धीरे-धीरे हम इन नौ द्वारों को बंद करके अपने ख़याल को दसवें दरवाज़े की ओर मोड़ें जो अंदर की ओर खुलता है। चूँकि हमारा मानना है कि इसी दरवाज़े पर – जिसे तीसरा तिल भी कहा जाता है – मुक्ति हमारा इंतज़ार कर रही है इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि हम इन नौ द्वारों को बंद करने की अपनी ज़िम्मेदारी निभाएँ ताकि हमारा ध्यान अपने आप दसवें दरवाज़े की ओर ऊपर जा सके। इसका मतलब है कि हमें अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करनी चाहिए कि हम समझदारी से उन चीज़ों का चुनाव करें जिनका संबंध हमारे मन और इंद्रियाँ से है क्योंकि इसका सीधा असर दसवें द्वार तक पहुँचने की हमारी क्षमता पर पड़ता है।

हमें विवेक की अद्भुत दात दी गई है। इसकी मदद से यह हमें तय करना है कि हम क्या देखें, सुनें, सूँघें, चखें और खाएँ। हमें किन चीज़ों के संपर्क में आना है, इस बारे में सही फ़ैसला करने पर हमें महसूस होता है कि जब हम भजन-सिमरन करते हैं तब ख़याल को एकाग्र करना ज़्यादा आसान हो जाता है क्योंकि ऐसा करने से पूरा दिन हमारा ख़याल उतना नहीं फैलता जितना यह आमतौर पर फैलता है। साथ ही, भजन-सिमरन के ज़रिए ख़याल को तीसरे तिल पर इकट्ठा करने से हम धीरे-धीरे अपने ख़याल को नौ द्वारों से हटाकर अंदर की ओर मोड़ने लगते हैं।

शब्द चाहे कितने भी तर्कपूर्ण, आकर्षक या प्रेरणादायक क्यों न हों, उनका कोई मूल्य नहीं होता जब तक कि उनमें दिए गए संदेश को अमल में नहीं लाया जाता। अंत में, सिर्फ़ हमारे कर्म ही मायने रखते हैं। इस समय हमारा यह मानना कि नौ द्वारों को बंद करने से हम दसवें द्वार तक पहुँच जाएँगे, महज़ एक धारणा है। मगर अपने असल रूहानी अभ्यास को करने से हम उस शाश्वत मुक्ति की ओर आगे बढ़ेंगे जिसकी हमें खोज है।

इसी तरह, जब हम अपने सतगुरु के प्रति अपने प्रेम का इज़हार करते हैं तब हमें बड़ी विनम्रता से याद दिलाया जाता है कि हमें इस प्रेम को अपनी करनी द्वारा प्रकट करना है। हमारे कर्म हमेशा हमारे द्वारा किए गए दावों,

हमारे इरादों और इच्छाओं के अनुरूप होने चाहिएँ क्योंकि अपनी करनी द्वारा ही हम मंज़िल तक पहुँच पाएँगे।

हम अपने प्यार को अपनी करनी द्वारा कैसे ज़ाहिर करें? इस संदर्भ में ब्यास के संत-सतगुरुओं से बेहतर मिसाल और क्या हो सकती है? वे परमात्मा की रज़ा में रहते हुए अच्छे या बुरे दोनों हालात को उसकी दात समझकर समान रूप से स्वीकार करते हुए मानवता की अथक सेवा करते हैं। मन की हर इच्छा और आकांक्षा को न मानकर, शरीर के नौ दरवाज़ों को बंद करके मन को वश में करके उन्होंने स्वयं आदर्श शिष्य की मिसाल पेश की है। अगर हम अपनी आत्मा को परमात्मा में अभेद करने का अपना रूहानी लक्ष्य पूरा करना चाहते हैं तो हमें संत-सतगुरुओं के उदाहरण से प्रेरणा लेकर उनके जैसा बनने की कोशिश करनी चाहिए।

जिज्ञासु होने के नाते हम अकसर रूहानी तरक़्क़ी करने की इच्छा ज़ाहिर करते हैं पर क्या हमारी करनी इस इच्छा को दर्शाती है? अगर हम सचमुच रूहानी तरक़्क़ी करना चाहते हैं, तो आइए, अपने प्यार और तड़प को केवल शब्दों द्वारा नहीं बल्कि अपनी करनी में ज़ाहिर करें। इसमें अपने सतगुरु के उपदेश के अनुसार जीवन जीना भी शामिल है जोकि प्रेम का साकार रूप हैं।

* * *